सुमित्रानन्दन पंत के साहित्य में प्रकृति चित्रण का स्वरूप

(Forms of Nature Depiction in the Literature of Sumitranandan Pant)

कुंदन साही

सुमित्रानन्दन पंत के साहित्य में प्रकृति चित्रण का स्वरूप

सुमित्रानन्दन पंत के साहित्य में प्रकृति चित्रण का स्वरूप

(Forms of Nature Depiction in the Literature of Sumitranandan Pant)

कुंदन साही

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5501-4

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

छायावाद को मुख्यत: 'प्रेरणा का काव्य' मानने वाले इस कोमल-प्राण कवि ने 'हार' नामक उपन्यास के लेखन से अपनी रचना-यात्रा आरंभ की थी, जो 'मुक्ताभ' के प्रणयन तक जारी रही। मुख्यत: कवि-रूप में प्रसिद्ध होने के अलावा ये 'प्रथम कोटि के आलोचक, विचारक और गद्यकार' थे। इन्होंने मुक्तक, लंबी कविता, गद्य-नाटिका, पद्य-नाटिका, रेडियो-रूपक, एकांकी, उपन्यास, कहानी इत्यादि जैसी विभिन्न विधाओं में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं और लोकायतन तथा सत्यकाम जैसे वृहद् महाकाव्य भी लिखे हैं। विधाओं की विविधता की दृष्टि से इनके द्वारा संपादित 'रूपाभ पत्रिका' (सन् 1938 ईस्वीं) की संपादकीय टिप्पणियाँ और मधुज्वाल की भावानुवादाश्रित कविताएँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

आशय यह कि विभिन्न विधाओं में उपलब्ध इनके विपुल साहित्य को एक नातिदीर्घ रचना-संचयन में प्रस्तुत करना कठिन कार्य है। रचनाओं की विपुलता के साथ ही यह भी लक्ष्य करने योग्य है कि प्रकृति और नारी-सौंदर्य से रचनारंभ करने वाले पंत जी मानव, सामान्य जन और समग्र मानवता की कल्याण-कामना से सदैव जुड़े रहे। इनकी मान्यता थी कि 'आने वाला मानव निश्चिय ही न पूर्व का होगा, न पश्चिम का।'

ये सार्वभौम मनुष्यता के विश्वासी थे। अध्यात्म, अंत: चेतना, प्रेम, समदिक् संचरण इत्यादि जैसा संकल्पनाओं से भावाकुल पंत के लेखन-चिन्तन का केन्द्र-बिन्दु हमेशा 'लोक' पक्ष ही रहा, जो लोकायतन के नामकरण से भी संकेतित होता है। पंत-काव्य का तृतीय चरण, जो 'नवीन सगुण' के नाम से

चर्चित है और जिसे हम शुभेषणा-सदिच्छा का स्वस्ति-काव्य कह सकते हैं, इसी 'लोक' के मंगल पर केन्द्रित है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**सुमित्रानंदन पंत**	**1**
	कौसानी में महाकवि का दुर्लभ चित्र	4
	महाकाव्य	7
	सुमित्रानन्दन पंत हस्तलिपि 'नक्षत्र'	9
2.	**सुमित्रानंदन पंत का प्रकृति**	**19**
	सुमित्रानंदन पंत का प्रकृति चित्रण	20
	आलंबन रूप	23
3.	**सुमित्रानन्दन पंत की रचनाएँ**	**27**
	युगपथ –सुमित्रानन्दन पंत	27
	युगपथ का आकर्षण	27
	भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति पर उद्‌बोधन	28
	सबसे सशक्त रचना	28
	भारत की सांस्कृतिक मेघा में आस्था	28
	युगांत –सुमित्रानन्दन पंत	28
	गान्धीवादी विचारधारा	29
	सर्वश्रेष्ठ रचना 'बापू के प्रति'	29
	फ्रायड का दर्शन	32
	नयी क्रांति–चेतना का प्रतीक	32
	पल्लव में संकलित कविताएँ	33

भाषा और शैली 35
पल्लव का महत्त्व 36
ग्रंथि 84
कथानक 85
प्रथम खंड 85
1922 और 1927 की रचनाएँ 88
लेखक का कथन 91
मानवता का चित्रण 93
ग्रामीण जीवन 93
4. स्वर्णधूलि - सुमित्रानन्दन पंत **104**
कवि-मानस की स्वर्ण चेतना 104
रचनाएँ 104

1

सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत (अंग्रेजी– जन्म– 20 मई, 1900, मृत्यु– 28 दिसंबर, 1977) हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार स्तंभों में से एक हैं। सुमित्रानंदन पंत नये युग के प्रवर्तक के रूप में आधुनिक हिन्दी साहित्य में उदित हुए। सुमित्रानंदन पंत ऐसे साहित्यकारों में गिने जाते हैं, जिनका प्रकृति चित्रण समकालीन कवियों में सबसे बेहतरीन था। आकर्षक व्यक्तित्व के धनी सुमित्रानंदन पंत के बारे में साहित्यकार राजेन्द्र यादव कहते हैं कि 'पंत अंग्रेजी के रूमानी कवियों जैसी वेशभूषा में रहकर प्रकृति केन्द्रित साहित्य लिखते थे।' जन्म के महज छह घंटे के भीतर उन्होंने अपनी माँ को खो दिया। पंत लोगों से बहुत जल्द प्रभावित हो जाते थे।

पंत ने महात्मा गाँधी और कार्ल मार्क्स से प्रभावित होकर उन पर रचनाएँ लिख डालीं। हिंदी साहित्य के विलियम वर्ड्सवर्थ कहे जाने वाले इस कवि ने महानायक अमिताभ बच्चन को 'अमिताभ' नाम दिया था। पद्मभूषण, ज्ञानपीठ पुरस्कार और साहित्य अकादमी पुरस्कारों से नवाजे जा चुके पंत की रचनाओं में समाज के यथार्थ के साथ-साथ प्रकृति और मनुष्य की सत्ता के बीच टकराव भी होता था। हरिवंश राय 'बच्चन' और श्री अरविंदो के साथ उनकी जिंदगी के अच्छे दिन गुजरे। आधी सदी से भी अधिक लंबे उनके रचनाकाल में आधुनिक हिंदी कविता का एक पूरा युग समाया हुआ है।

छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में एक, सुमित्रानंदन पंत का साहित्य को योगदान अविस्मरणीय है। आपका जन्म 20 मई, 1900 को अल्मोड़ा जिले के कौसानी ग्राम में हुआ। आप स्वीकार करते हैं कि जन्म-भूमि के नैसर्गिक

सौन्दर्य नें ही आपके भीतर के कवि को बाहर लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। यही कारण है कि छायावाद की वृहत्रयी में सम्मिलित रह आपनें हिन्दी कविता को इतने सुन्दर प्रकृति चित्र प्रदान किये हैं कि आपको हिन्दी का 'वर्डसवर्थ' कहा जाता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के अलावा शैली, कीट्स, टेनिसन आदि अंग्रेजी कवियों की कृतियों ने भी आपको प्रभावित किया है।

संघर्षपूर्ण जीवन की परिणति होता है एक भावुक मन और शायद इसी तरह अंजान कविता बही आती है। जन्म के केवल छः घंटे बाद ही आपकी माता का देहावसान हो गया। आप सात भाई-बहने में सबसे छोटे थे तथा आपका नाम गुसाई दत्त रखा गया था आपको यह नाम प्रिय नहीं था अतः आपने बाद में अपना नाम सुमित्रानंदन पंत रख लिया। आपका आरंभिक लालन-पालन आपकी दादी नें किया। 1918 में आप काशी आ गये तथा क्वींस कॉलेज में अध्ययन करने लगे। 1921 में गाँधी जी के असहयोग आंदोलन के आह्वाहन पर आपने कॉलेज छोड़ दिया और घर पर रह कर ही हिन्दी, संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी का अध्ययन करने लगे। सन् 1926-27 में आपकी पहली पुस्तक 'पल्लव' नाम से प्रकाशित हुई। कुछ समय पश्चात् आप अपने भाई देवीदत्त के साथ अल्मोडा आ गये और इसी दौरान वे मार्क्स व फ्रायड तथा उनकी विचारधारा के प्रभाव में आये। 1938 में आपनें 'रूपाभ' नामक प्रगतिशील मासिक पत्र निकाला। शमशेर, रघुपति सहाय आदि के सान्निध्य में आप प्रगतिशील लेखक संघ से भी जुड़े रहे। आप 1955 से 1962 तक आकाशवाणी से जुड़े रहे व मुख्य-प्रोड्यूसर के पद पर कार्य किया। आपकी विचारधारा योगी अरविन्द से प्रभावित भी हुई, जो बाद की आपकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। 28 दिसंबर, 1977 को आपका देहावसान हिन्दी जगत को साहित्य की अपूर्णीय क्षति था।

"वीणा" तथा "पल्लव" में संकलित आपके छोटे गीत हमें विराट व्यापक सौंदर्य तथा तपरूपूत पवित्रता से साक्षात्कार कराते हैं। "युगांत" की रचनाओं के लेखन तक आप प्रगतिशील विचारधारा से जुड़ते प्रतीत होते हैं। "युगांत" से "ग्राम्या" तक आपकी काव्ययात्रा निःसंदेह प्रगतिवाद के निश्चित व प्रखर स्वरों की उद्घोषणा करती है।

आपकी साहित्यिक यात्रा के तीन प्रमुख पड़ाव हैं-प्रथम में आप छायावादी हैं, दूसरे में समाजवादी आदर्शों से चलित प्रगतिवादी तथा तीसरे में अरविन्द दर्शन से प्रभावित अध्यात्मवादी।

आपकी रचनाओं की कुछ बानगी प्रस्तुत है। प्रकृति की गूढ़ता को आप सहजता से कह जाते हैं–

शशिकिरणों से उतर उतर कर भू पर कामरूप नभचर
चूम नवल कलियों का मृदुमुख सिखा रहे थे मुस्काना

प्रकृति के माध्यम से मानव के उन्नत भविष्य की कामना करते हुए पंत लिखते हैं–

धरती का आँगन इठलाता
शस्य श्यामला भू का यौवन
अंतरिक्ष का हृदय लुभाता!
जौ गेहूँ की स्वर्णिम बाली
भू का अंचल वैभवशाली
इस अंचल से चिर अनादि से
अंतरंग मानव का नाता..

किसानों की दशा पर 'वे आँखें' कविता की कुछ पंक्तियाँ–

अंधकार की गुहा सरीखी, उन आँखों से डरता है मन,
भरा दूर तक उनमें दारुण, दैन्य दु:ख का नीरव रोदन

भौतिक बंधनों से पहले आध्यात्मिक बंधनों को तोड़ने की बात करते हुए आप लिखते हैं–

आओ, अपने मन को टोवें!
व्यर्थ देह के सँग मन की भी
निर्धनता का बोझ न ढोवें

आपका भाषा पर पूर्णाधिकार था। उपमाओं की लड़ी प्रस्तुत करने में आपका कोई सानी नहीं। आपने हिन्दी काव्य को एक सशक्त भाषा प्रदान की, छंदों का परिष्कार किया तथा खड़ी बोली की काव्यशक्ति को संवर्द्धित, पुष्ट तथा परिष्कृत किया। आपका संपूर्ण कृत्तिव हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। आपकी महत्त्वपूर्ण कृत्तियाँ हैं–वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुंजन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, उत्तरा, कला और बूढ़ा चाँद, चिदंबरा तथा लोकायतन। काव्य के अलावा आप नें आलोचना, कहानी, आत्मकथा आदि गद्य विधाओं में भी रचनायें कीं। आपको पद्मभूषण (1961), ज्ञानपीठ (1968), साहित्य अकादमी, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार जैसे सम्मानों से अलंकृत किया गया है। आज आपकी पुण्यतिथि पर आपको कोटि-कोटि नमन।।

कौसानी में महाकवि का दुर्लभ चित्र

प्रारम्भिक जीवन

कवि के बचपन का नाम 'गुसाई दत्त' था। स्लेटी छतों वाले पहाड़ी घर, आंगन के सामने आड़ू, खुबानी के पेड़, पक्षियों का कलरव, सर्पिल पगडण्डियां, बांज, बुरांश व चीड़ के पेड़ों की बयार व नीचे दूर-दूर तक मखमली कालीन सी पसरी कत्यूर घाटी व उसके ऊपर हिमालय के उत्तंग शिखरों और दादी से सुनी कहानियों व शाम के समय सुनायी देने वाली आरती की स्वर लहरियों ने गुसाई दत्त को बचपन से ही कवि हृदय बना दिया था। क्योंकि जन्म के छः घण्टे बाद ही इनकी माँ का निधन हो गया था, इसीलिए प्रकृति की यही रमणीयता इनकी माँ बन गयी। प्रकृति के इसी ममतामयी छांव में बालक गुसाई दत्त धीरे-धीरे यहां के सौन्दर्य को शब्दों के माध्यम से कागज में उकेरने लगा। पिता 'गंगादत्त' उस समय कौसानी चाय बगीचे के मैनेजर थे। उनके भाई संस्कृत व अंग्रेजी के अच्छे जानकार थे, जो हिन्दी व कुमाँऊनी में कविताएं भी लिखा करते थे। यदा-कदा जब उनके भाई अपनी पत्नी को मधुर कंठ से कविताएं सुनाया करते तो बालक गुसाई दत्त किवाड़ की ओट में चुपचाप सुनता रहता और उसी तरह के शब्दों की तुकबन्दी कर कविता लिखने का प्रयास करता। बालक गुसाई दत्त की प्राइमरी तक की शिक्षा कौसानी के 'वर्नाक्यूलर स्कूल' में हुई। इनके कविता पाठ से मुग्ध होकर स्कूल इंस्पैक्टर ने इन्हें उपहार में एक पुस्तक दी थी। ग्यारह साल की उम्र में इन्हें पढ़ाई के लिये अल्मोड़ा के 'गवर्नमेंट हाईस्कूल' में भेज दिया गया। कौसानी के सौन्दर्य व एकान्तता के अभाव की पूर्ति अब नगरीय सुख वैभव से होने लगी। अल्मोड़ा की खास संस्कृति व वहां के समाज ने गुसाई दत्त को अन्दर तक प्रभावित कर दिया। सबसे पहले उनका ध्यान अपने नाम पर गया। और उन्होंने लक्ष्मण के चरित्र को आदर्श मानकर अपना नाम गुसाई दत्त से बदल कर 'सुमित्रानंदन' कर लिया। कुछ समय बाद नेपोलियन के युवावस्था के चित्र से प्रभावित होकर अपने लम्बे व घुंघराले बाल रख लिये।

साहित्यिक परिचय

अल्मोड़ा में तब कई साहित्यिक व सांस्कृतिक गतिविधियां होती रहती थीं जिसमें पंत अक्सर भाग लेते रहते। स्वामी सत्यदेव जी के प्रयासों से नगर में 'शुद्ध

साहित्य समिति' नाम से एक पुस्तकालय चलता था। इस पुस्तकालय से पंत जी को उच्च कोटि के विद्वानों का साहित्य पढ़ने को मिलता था। कौसानी में साहित्य के प्रति पंत जी में जो अनुराग पैदा हुआ वह यहां के साहित्यिक वातावरण में अब अंकुरित होने लगा। कविता का प्रयोग वे सगे सम्बन्धियों को पत्र लिखने में करने लगे। शुरुआती दौर में उन्होंने 'बागेश्वर के मेले', 'वकीलों के धनलोलुप स्वभाव' व 'तम्बाकू का धुंआ' जैसी कुछ छुट-पुट कविताएं लिखी। आठवीं कक्षा के दौरान ही उनका परिचय प्रख्यात नाटककार गोविन्द बल्लभ पंत, श्यामाचरण दत्त पंत, इलाचन्द्र जोशी व हेमचन्द्र जोशी से हो गया था। अल्मोड़ा से तब हस्तलिखित पत्रिका 'सुधाकर' व 'अल्मोड़ा अखबार' नामक पत्र निकलता था जिसमें वे कविताएं लिखते रहते। अल्मोड़ा में पंत जी के घर के ठीक ऊपर स्थित गिरजाघर की घंटियों की आवाज उन्हें अत्यधिक सम्मोहित करती थीं। अक्सर प्रत्येक रविवार को वे इस पर एक कविता लिखते। 'गिरजे का घण्टा' शीर्षक से उनकी यह कविता सम्भवतः पहली रचना है-

सुमित्रानंदन पंत कविता पढ़ते हुए–

नभ की उस नीली चुप्पी पर घण्टा है एक टंगा सुन्दर
जो घड़ी घड़ी मन के भीतर कुछ कहता रहता बज बज कर

दुबले पतले व सुन्दर काया के कारण पंत जी को स्कूल के नाटकों में अधिकतर स्त्री पात्रों का अभिनय करने को मिलता। 1916 में जब वे जाड़ों की छुट्टियों में कौसानी गये तो उन्होंने 'हार' शीर्षक से 200 पृष्ठों का 'एक खिलौना' उपन्यास लिख डाला। जिसमें उनके किशोर मन की कल्पना के नायक नायिकाओं व अन्य पात्रों की मौजूदगी थी। कवि पंत का किशोर कवि जीवन कौसानी व अल्मोड़ा में ही बीता था। इन दोनों जगहों का वर्णन भी उनकी कविताओं में मिलता है।

स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

हरिवंशराय बच्चन, सुमित्रानंदन पंत और रामधारी सिंह 'दिनकर'

1921 के असहयोग आंदोलन में उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया था, पर देश के स्वतंत्रता संग्राम की गंभीरता के प्रति उनका ध्यान 1930 के नमक सत्याग्रह के समय से अधिक केंद्रित होने लगा, इन्हीं दिनों संयोगवश उन्हें कालाकांकर में ग्राम जीवन के अधिक निकट संपर्क में आने का अवसर मिला। उस ग्राम जीवन की पृष्ठभूमि में जो संवेदन उनके हृदय में अंकित होने लगे, उन्हें वाणी

देने का प्रयत्न उन्होंने युगवाणी (1938) और ग्राम्या (1940) में किया। यहाँ से उनका काव्य, युग का जीवन-संघर्ष तथा नई चेतना का दर्पण बन जाता है। स्वर्ण-किरण तथा उसके बाद की रचनाओं में उन्होंने किसी आध्यात्मिक या दार्शनिक सत्य को वाणी न देकर व्यापक मानवीय सांस्कृतिक तत्त्व को अभिव्यक्ति दी, जिसमें अन्न प्राण, मन आत्मा, आदि मानव-जीवन के सभी स्वरों की चेतना को संयोजित करने का प्रयत्न किया गया।

काव्य एवं साहित्य की साधना

पंत जी संघर्षों के एक लंबे दौर से गुजरे, जिसके दौरान स्वयं को काव्य एवं साहित्य की साधना में लगाने के लिए उन्होंने अपनी आजीविका सुनिश्चित करने का प्रयास किया। बहुत पहले ही उन्होंने यह समझ लिया था कि उनके जीवन का लक्ष्य और कार्य यदि कोई है, तो वह काव्य साधना ही है। पंत की भाव-चेतना महाकवि रवींद्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी और श्री अरबिंदो घोष की रचनाओं से प्रभावित हुई। साथ ही कुछ मित्रों ने मार्क्सवाद के अध्ययन की ओर भी उन्हें प्रवृत किया और उसके विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पक्षों को उन्होंने गहराई से देखा व समझा। 1950 में रेडियो विभाग से जुड़ने से उनके जीवन में एक ओर मोड़ आया। सात वर्ष उन्होंने 'हिन्दी चीफ प्रोड्यूसर' के पद पर कार्य किया और उसके बाद साहित्य सलाहकार के रूप में कार्यरत रहे।

युग प्रवर्तक कवि

सुमित्रानंदन पंत आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक युग प्रवर्तक कवि हैं। उन्होंने भाषा को निखार और संस्कार देने, उसकी सामर्थ्य को उद्घाटित करने के अतिरिक्त नवीन विचार व भावों की समृद्धि दी। पंत सदा ही अत्यंत सशक्त और ऊर्जावान कवि रहे हैं। सुमित्रानंदन पंत को मुख्यत: प्रकृति का कवि माना जाने लगा। लेकिन पंत वास्तव में मानव-सौंदर्य और आध्यात्मिक चेतना के भी कुशल कवि थे।

रचनाकाल

पंत का पल्लव, ज्योत्सना तथा गुंजन का रचनाकाल काल (1926-33) उनकी सौंदर्य एवं कला-साधना का काल रहा है। वह मुख्यत: भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आदर्शवादिता से अनुप्राणिक थे। किंतु युगांत (1937)

तक आते-आते बहिर्जीवन के खिंचाव से उनके भावात्मक दृष्टिकोण में परिवर्तन आए। पन्त जी की रचनाओं का क्षेत्र बहुविध और बहुआयामी है। आपकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

महाकाव्य

सुमित्रानन्दन पंत हस्तलिपि 'याद'

'लोकायतन' कवि सुमित्रानन्दन पन्त का महाकाव्य है। कवि की विचारधारा और लोक-जीवन के प्रति उसकी प्रतिबद्धता इस रचना में अभिव्यक्त हुई है। इस पर कवि को 'सोवियत रूस' तथा उत्तर प्रदेश शासन से पुरस्कार प्राप्त हुआ है। पंत जी को अपने माता-पिता के प्रति असीम-सम्मान था। इसलिए उन्होंने अपने दो महाकाव्यों में से एक महाकाव्य 'लोकायतन' अपने पूज्य पिता को और दूसरा महाकाव्य 'सत्यकाम' अपनी स्नेहमयी माता को, जो इन्हें जन्म देते ही स्वर्ग सिधार गई, समर्पित किया है। अपनी माँ सरस्वती देवी को स्मरण करते हुए इन्होंने अपना दूसरा महाकाव्य 'सत्यकाम' जिन शब्दों के साथ उन्हें समर्पित किया है, वे दृष्टव्य हैं-

मुझे छोड़ अनगढ़ जग में तुम हुई अगोचर,
भाव-देह धर लौटीं माँ की ममता से भर !
वीणा ले कर में, शोभित प्रेरणा-हंस पर,
साध चेतना-तंत्रि रसौ वै सः झंकृत कर
खोल हृदय में भावी के सौन्दर्य दिगंतर !

काव्य-संग्रह

'वीणा', 'पल्लव' तथा 'गुंजन' छायावादी शैली में सौन्दर्य और प्रेम की प्रस्तुति है। 'युगान्त', युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में पन्त जी के प्रगतिवादी और यथार्थपरक भावों का प्रकाशन हुआ है। 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि', 'युगपथ', 'उत्तरा', 'अतिमा', तथा 'रजत-रश्मि' संग्रहों में अरविन्द-दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। इनके अतिरिक्त 'कला और बूढ़ा चाँद' तथा 'चिदम्बरा' भी आपकी सम्मानित रचनाएँ हैं। पन्त जी की अन्तर्दृष्टि तथा संवेदनशीलता ने जहाँ उनके भाव-पक्ष को गहराई और विविधता प्रदान की हैं, वहीं उनकी कल्पना-प्रबलता और अभिव्यक्ति-कौशल ने उनके कला-पक्ष को सँवारा है।

रचनाएँ

चिदंबरा 1958 का प्रकाशन है। इसमें युगवाणी (1937–38) से अतिमा (1948) तक कवि की 10 कृतियों से चुनी हुई 196 कविताएं संकलित हैं। एक लंबी आत्मकथात्मक कविता आत्मिका भी इसमें सम्मिलित है, जो वाणी (1957) से ली गई है। चिदंबरा पंत की काव्य चेतना के द्वितीय उत्थान की परिचायक है। प्रमुख रचनाएं इस प्रकार है–

कविताएं

वीणा (1919)
ग्रंथि (1920)
पल्लव (1926)
गुंजन (1932)
युगांत (1937)
युगवाणी (1938)
ग्राम्या (1940)
स्वर्ण-किरण (1947)
स्वर्ण-धूलि (1947)
उत्तरा (1949)
युगपथ (1949)
चिदंबरा (1958)
कला और बूढ़ा चाँद (1959)
लोकायतन (1964)
गीतहंस (1969)।

कहानियाँ

पाँच कहानियाँ (1938)

उपन्यास

हार (1960),
आत्मकथात्मक संस्मरण
साठ वर्ष–एक रेखांकन (1963)।

साहित्यिक विशेषताएँ

छायावाद को मुख्यत: 'प्रेरणा का काव्य' मानने वाले इस कोमल-प्राण कवि ने 'हार' नामक उपन्यास के लेखन से अपनी रचना-यात्रा आरंभ की थी, जो 'मुक्ताभ' के प्रणयन तक जारी रही। मुख्यत: कवि-रूप में प्रसिद्ध होने के अलावा ये 'प्रथम कोटि के आलोचक, विचारक और गद्यकार' थे। इन्होंने मुक्तक, लंबी कविता, गद्य-नाटिका, पद्य-नाटिका, रेडियो-रूपक, एकांकी, उपन्यास, कहानी इत्यादि जैसी विभिन्न विधाओं में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं और लोकायतन तथा सत्यकाम जैसे वृहद् महाकाव्य भी लिखे हैं। विधाओं की विविधता की दृष्टि से इनके द्वारा संपादित 'रूपाभ पत्रिका' (सन् 1938 ईस्वीं) की संपादकीय टिप्पणियाँ और मधुज्वाल की भावानुवादाश्रित कविताएँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। आशय यह कि विभिन्न विधाओं में उपलब्ध इनके विपुल साहित्य को एक नातिदीर्घ रचना-संचयन में प्रस्तुत करना कठिन कार्य है। रचनाओं की विपुलता के साथ ही यह भी लक्ष्य करने योग्य है कि प्रकृति और नारी-सौंदर्य से रचनारंभ करने वाले पंत जी मानव, सामान्य जन और समग्र मानवता की कल्याण-कामना से सदैव जुड़े रहे। इनकी मान्यता थी कि 'आने वाला मानव निश्चिय ही न पूर्व का होगा, न पश्चिम का।' ये सार्वभौम मनुष्यता के विश्वासी थे। अध्यात्म, अंत: चेतना, प्रेम, समदिक् संचरण इत्यादि जैसा संकल्पनाओं से भावाकुल पंत के लेखन-चिन्तन का केन्द्र-बिन्दु हमेशा 'लोक' पक्ष ही रहा, जो लोकायतन के नामकरण से भी संकेतित होता है। पंत-काव्य का तृतीय चरण, जो 'नवीन सगुण' के नाम से चर्चित है और जिसे हम शुभेषणा-सदिच्छा का स्वस्ति-काव्य कह सकते हैं, इसी 'लोक' के मंगल पर केन्द्रित है।

सुमित्रानन्दन पंत हस्तलिपि 'नक्षत्र'

प्रकृति-प्रेमी कवि

'उच्छवास' से लेकर 'गुंजन' तक की कविता का सम्पूर्ण भावपट कवि की सौन्दर्य-चेतना का काल है। सौन्दर्य-सृष्टि के उनके प्रयत्न के मुख्य उपादान हैं- प्रकृति, प्रेम और आत्म-उद्बोधन। अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा ने उन्हें बचपन से ही अपनी ओर आकृष्ट किया। ऐसा प्रतीत होता है जैसे माँ की ममता से रहित उनके जीवन में मानो प्रकृति ही उनकी माँ हो। उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा

के पर्वतीय अंचल की गोद में पले बढ़े पंत जी स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि उस मनोरम वातावरण का इनके व्यक्तित्व पर गंभीर प्रभाव पड़ा। कवि या कलाकार कहां से प्रेरणा ग्रहण करता है इस बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए पंत जी कहते हैं, संभवतः प्रेरणा के स्रोत भीतर न होकर अधिकतर बाहर ही रहते हैं। अपनी काव्य यात्रा में पन्त जी सदैव सौन्दर्य को खोजते नजर आते हैं। शब्द, शिल्प, भाव और भाषा के द्वारा कवि पंत प्रकृति और प्रेम के उपादानों से एक अत्यंत सूक्ष्य और हृदयकारी सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं, किंतु उनके शब्द केवल प्रकृति-वर्णन के अंग न होकर एक-दूसरे अर्थ की गहरी व्यंजना से संयोजित हैं। उनकी रचनाओं में छायावाद एवं रहस्यवाद का समावेश भी है। साथ ही शेली, कीट्स, टेनिसन आदि अंग्रेजी कवियों का प्रभाव भी है। मेरे मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौन्दर्य को है जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ जिसने छुटपन से ही मुझे अपने रूपहले एकांत में एकाग्र तन्मयता के रश्मिदोलन में झुलाया, रिझाया तथा कोमल कण्ठ वन-पखियों ने साथ बोलना कुहुकन सिखाया। पंत जी को जन्म के उपरांत ही मातृ-वियोग सहना पड़ा।

भाव पक्ष

पन्त जी के भाव-पक्ष का एक प्रमुख तत्त्व उनका मनोहारी प्रकृति चित्रण है। कौसानी की सौन्दर्यमयी प्राकृतिक छटा के बीच पन्त जी ने अपनी बाल-कल्पनाओं को रूपायित किया था। प्रकृति के प्रति उनका सहज आकर्षण उनकी रचनाओं के बहुत बड़े भाग को प्रभावित किए हुए है। प्रकृति के विविध आयामों और भंगिमाओं को हम पन्त के काव्य में रूपांकित देखते हैं। वह मानवी-कृता सहेली है, भावोद्दीपिका है, अभिव्यक्ति का आलम्बन है और अलंकृता प्रकृति-वधू भी है। इसके अतिरिक्त प्रकृति कवि पन्त के लिए उपदेशिका और दार्शनिक चिन्तन का आधार भी बनी है। कवि पन्त को सामान्यतया कोमल-कान्त भावनाओं और सौन्दर्य का कवि समझा जाता है, किन्तु जीवन के यथार्थों से सामना होने पर कवि में जीवन के प्रति यथार्थपरक और दार्शनिक दृष्टिकोण का विकास होता गया है। सर्वप्रथम पन्त मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए, जिसका प्रभाव उनकी 'युगान्त', 'युगवाणी' आदि रचनाओं में परिलक्षित होता है। गाँधीवाद से भी आप प्रभावित दिखते हैं। 'लोकायतन' में यह प्रभाव विद्यमान है।

महर्षि अरविन्द की विचारधारा का भी आप पर गहरा प्रभाव पड़ा। 'गीत-विहग' रचना इसका उदाहरण है। सौन्दर्य और उल्लास के कवि पन्त को जीवन का निराशामय विरूप-पक्ष भी भोगना पड़ा और इसकी प्रतिक्रिया 'परिवर्तन' नामक रचना में दृष्टिगत होती है-

अखिल यौवन के रंग उभार हड्डियों के हिलते कंकाल,
खोलता इधर जन्म लोचन मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण।

पन्त जी के काव्य में मानवतावादी दृष्टि को भी सम्मानित स्थान प्राप्त है। वह मानवीय प्रतिष्ठा और मानव-जाति के भावी विकास में दृढ़ विश्वास रखते हैं। 'द्रुमों की छाया' और 'प्रकृति की माया' को छोड़कर जो पन्त 'बाला के बाल-जाल' में 'लोचन उलझाने' को प्रस्तुत नहीं थे, वही मानव को विधाता की सुन्दरतम कृति स्वीकार करते हैं-

सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर, मानव तुम सबसे सुन्दरतम।

वह चाहते हैं कि देश, जाति और वर्गों में विभाजित मनुष्य की केवल एक ही पहचान हो - मानव।

भाषा-शैली

कवि पन्त का भाषा पर असाधारण अधिकार है। भाव और विषय के अनुकूल मार्मिक शब्दावली उनकी लेखनी से सहज प्रवाहित होती है। यद्यपि पन्त की भाषा का एक विशिष्ट स्तर है फिर भी वह विषयानुसार परिवर्तित होती है। पन्त जी के काव्य में एकाधिक शैलियों का प्रयोग हुआ है। प्रकृति-चित्रण में भावात्मक, आलंकारिक तथा दृश्य विधायनी शैली का प्रयोग हुआ है। विचार-प्रधान तथा दार्शनिक विषयों की शैली विचारात्मक एवं विश्लेषणात्मक भी हो गई है। इसके अतिरिक्त प्रतीक-शैली का प्रयोग भी हुआ है। सजीव बिम्ब-विधान तथा ध्वन्यात्मकता भी आपकी रचना-शैली की विशेषताएँ हैं।

अलंकरण

पन्त जी ने परम्परागत एवं नवीन, दोनों ही प्रकार के अलंकारों का भव्यता से प्रयोग किया है। बिम्बों की मौलिकता तथा उपमानों की मार्मिकता हृदयहारिणी है। रूपक, उपमा, सांगरूपक, मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय तथा ध्वन्यर्थ-व्यंजना का आकर्षक प्रयोग आपने किया है।

छंद

पन्त जी ने परम्परागत छन्दों के साथ-साथ नवीन छंदों की भी रचना की है। आपने गेयता और ध्वनि-प्रभाव पर ही बल दिया है, मात्राओं और वर्णों के क्रम तथा संख्या पर नहीं। प्रकृति के चितेरे तथा छायावादी कवि के रूप में पन्त जी का स्थान निश्चय ही विशिष्ट है। हिन्दी की लालित्यपूर्ण और संस्कारित खड़ी बोली भी पन्त जी की देन है। पन्त जी विश्व-साहित्य में भी अपना स्थान बना गए हैं।

पुरस्कार

सुमित्रानंदन पंत को पद्म भूषण (1961) और ज्ञानपीठ पुरस्कार (1968) से सम्मानित किया गया। कला और बूढ़ा चाँद के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, लोकायतन पर 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' एवं 'चिदंबरा' पर इन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

संग्रहालय

उत्तराखंड राज्य के कौसानी में महाकवि पंत की जन्म स्थली को सरकारी तौर पर अधिग्रहीत कर उनके नाम पर एक राजकीय संग्रहालय बनाया गया है, जिसकी देख-रेख एक स्थानीय व्यक्ति करता है। इस स्थल के प्रवेश द्वार से लगे भवन की छत पर महाकवि की मूर्ति स्थापित है। वर्ष 1990 में स्थापित इस मूर्ति का अनावरण वयोवृद्ध साहित्यकार तथा इतिहासवेत्ता पंडित नित्यानंद मिश्र द्वारा उनके जन्म दिवस 20 मई को किया गया था। महाकवि सुमित्रानंदन पंत का पैतृक ग्राम यहां से कुछ ही दूरी पर है, परन्तु वह आज भी अनजाना तथा तिरस्कृत है। संग्रहालय में महाकवि द्वारा उपयोग में लायी गयी दैनिक वस्तुएँ यथा शॉल, दीपक, पुस्तकों की अलमारी तथा महाकवि को समर्पित कुछ सम्मान-पत्र, पुस्तकें तथा हस्तलिपि सुरक्षित हैं।

मृत्यु

कौसानी चाय बागान के व्यवस्थापक के परिवार में जन्मे महाकवि सुमित्रानंदन पंत की मृत्यु 28 दिसम्बर, 1977 को इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश में हुई।

सुमित्रानंदन पंत की काव्ययात्रा के विविध चरण

जी हिन्दी के छायावादी युग चार के प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रकृति के एक मात्र माने जाने वाले सुकुमार कवि श्री सुमित्रानंदन पंत जी बचपन से ही काव्य प्रतिभा के धनी थे और 16 वर्ष की उम्र में अपनी पहली कविता रची "गिरजे का घंटा"। तब से वे निरंतर काव्य साधना में तल्लीन रहे।

पंत जी को जन्म के उपरांत ही मातृ-वियोग सहना पड़ा।

नियति ने ही निज कुटिल कर से सुखद
गोद मेरे लाड़ की थी छीन ली,
बाल्य ही में हो गई थी लुप्त हा!
मातृ अंचल की अभय छाया मुझे।

मां की कमी उन्हें काफी सालती रही और प्रकृति माँ की गोद का सहारा मिला तो मानों वे उसके लाड़ से अपने आप को पूरी तरह सरोबार कर लेना चाहते थे:–

"मातृहीन, मन में एकाकी, सजल बाल्य था स्थिति से अवगत,
स्नेहांचल से रहित, आत्म स्थित, धात्री पोषित, नम्र, भाव-रत

हालाकि पंत जी ने गद्य की भी कई विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई लेकिन मूलत: वे कविता के प्रति ही समर्पित थे। 1918 से 1920 तक की उनकी अधिकांश रचनाएं 'वीणा' में छपी हैं। यद्यपि अपनी आरंभिक रचनाओं 'वीणा' और 'ग्रंथि' से पंत जी ने काव्य प्रेमियों का ध्यान अपनी ओर खींचा जरूर पर एक छायावादी कवि के रूप में इनकी प्रतिष्ठा 'पल्लव' से ही मिली। 'पल्लव' की अधिकांश रचनाएं कॉलेज में पढ़ने जब वे प्रयाग आए, उसी दौरान लिखी गई। पंत जी कहते हैं, "शेली, कीट्स, टेनिसन आदि अंग्रेजी कवियों से बहुत-कुछ मैंने सीखा। मेरे मन में शब्द-चयन और ध्वनि-सौन्दर्य का बोध पैदा हुआ। 'पल्लव'-काल की प्रमुख रचनाओं का आरम्भ इसके बाद ही होता है।"

प्रकृति-सौन्दर्य और प्रकृति-प्रेम की अभिव्यंजना "पल्लव" में अधिक प्रांजल तथा परिपक्व रूप में हुई है। इस संग्रह के द्वारा पंत जी प्रकृति की रमणीय वीथिका से होकर काव्य के भाव-विशद् सौन्दर्य प्रासाद में प्रवेश पा सके। छायावाद के कवियों ने सृजन को मानव-मुक्ति चेतना की ओर ले जाने का काम किया। सुमित्रानंदन पंत ने रीतिवाद का विरोध करते हुए 'पल्लव' की भूमिका में कहा कि 'मुक्त जीवन-सौंदर्य की अभिव्यक्ति ही काव्य का प्रयोजन है।'

पल्लव को आलोचक भी छायावाद का पूर्ण उत्कर्ष मानते हैं। डॉ. नगेन्द्र का मानना है, "पल्लव' की भूमिका हिंदी में छायावाद-युग के आविर्भाव का ऐतिहासिक घोषणा-पत्र है।" भाव, भाषा, लय और अलंकरण के विविध उपकरणों का बड़ी कुशलता से इसमें समावेश किया गया है। 'पल्लव' में प्राकृतिक रहस्य की भावना ज्ञान की जिज्ञासा में परिणत हो गयी है। इसकी सीमाएं छायावादी अभिव्यंजना की सीमाएं हैं। इसमें पंत जी कल्पना द्वारा नवीन वास्तविकता की अनुभूति प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे थे। इसके साथ ही इसमें मानव जीवन की अनित्य वास्तविकता के भीतर सत्य को खोजने का प्रयत्न भी है, जिसके आधार पर नवीन वास्तविकता का निर्माण किया जा सके।

कवि पंत की रचनाओं को देख कर ऐसा लगता था जैसे वे स्वयं प्रकृति स्वरूप थे। उनकी विभिन्न रचनाओं में ऐसा लगता है जैसे कवि प्रकृति से बात कर रहा हो, अनुनय कर रहा हो, प्रश्न कर रहा हो। मानों प्रकृति कविमय हो गई है और कवि प्रकृतिमय हो गया है। प्रकृति से परे सोचना उनके लिए असंभव-सा था:-

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले! तेरे बाल जाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन।।"

कवि सम्राट पंत जी ने स्वयं माना कि छायावाद वाणी की नीरवता है, निस्तब्धता का उच्छ्वास है, प्रतिभा का विलास है, और अनंत का विलास है। अपनी संकुचित परिभाषा के कारण कुछ लोग पंत की रचनाओं में भी केवल पल्लव और पल्लव में भी कुछेक कविताओं को ही छायावाद के अंतर्गत स्वीकार करते हैं। मौन निमंत्रण में अज्ञात की जिज्ञासा होने के कारण रहस्यवाद है, अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता के कारण छायावाद है और कल्पनालोक में स्वच्छंद विचरण करने के कारण स्वच्छंदतावाद भी है। पंत का रहस्य भावना 'अज्ञात' की लालसा के रूप में व्यक्त हुई है। पंत सीमित ज्ञान की सीमा को तोड़कर प्रकृति और जगत के प्रति जिज्ञासु की तरह देखते हैं। पंत का बालक मन हर चीज से सवाल पूछता है।

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि, तूने कैसे पहचाना

'गुंजन', विशेषकर 'युगांत' में आकर पंत की काव्य यात्रा का प्रथम चरण समाप्त हो जाता है। 'गुंजन'-काल की रचनाओं में जीवन-विकास के सत्य पर पंत जी का विश्वास प्रतिष्ठित हो जाता है।

सुन्दर से नित सुन्दरतर, सुन्दरतर से सुन्दरतम
सुन्दर जीवन का क्रम रे, सुन्दर सुन्दर जग जीवन!

उनकी काव्य यात्रा का दूसरा चरण 'युगांत', 'युग-वाणी' और 'ग्राम्या' को माना जा सकता है। इस काल तक आते-आते कवि स्थायी वास्तविकता के विजय-गीत गाने को लालायित हो उठता है और उसके लिए आवश्यक साधना को अपनाने की तैयारी करने लगता है, उसे 'चाहिए विश्व को नव जीवन' का अनुभव भी होने लगता है।

नवीन जीवन तथा युग-परिवर्तन की धारणा को सामाजिक रूप देने की कोशिश 'युगान्त' में सक्रिय रूप में सामने आई है। 'युगान्त' की अधिकांश कविताएं कवि की तीखी भाव चेतना के परिवर्तन का संकेत देती हैं। यह परिवर्तन वस्तुवादी चेतना के प्रति अधिक आग्रहशील दिखता है। "द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र, हे स्रस्त, ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण" में जहां ओजपूर्ण आवेश है वहीं गा कोकिल' में नवीन जीवन पल्लवों से सौन्दर्य-मंडित करने का भी आग्रह है।

गा कोकिल, बरसा पावक कण
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन–
झरे जाति-कुलय वर्ण-पर्ण धन–
व्यक्ति-राष्ट्र-गत राग-द्वेष-रण–
झरें-मरें विस्मृत में तत्क्षण–
गा कोकिल, गा, मत कर चिन्तन -

'ग्राम्या' प्रगतिशील आन्दोलन के प्रभाव के अन्तर्गत लिखी हुई रचना है। इसमें मार्क्सवाद, श्रमिक-मजदूर, किसान-जनता के प्रति इन्होंने भावभीनी सहानुभूति प्रकट की है।

जगती के जन-पथ कानन में
तुम गाओ विहग अनादि गान।
चिर-शून्य शिशिर-पीड़ित जग में,
निज अमर स्वरों से भरो प्राण।

'ग्राम्या' 1940 की रचना है, जब प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य में घुटनों के बल चलना सीख रहा था। पंत जी कहते हैं, "'ग्राम्या' में मेरी क्रान्ति-भावना मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित ही नहीं होती, उसे आत्मसात् कर प्रभावित करने का भी प्रयत्न करती है।"

भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान,
जहां आत्म-दर्शन अनादि से समासीन अम्लान।

इन सब के साथ-साथ आदर्श तथा यथार्थ के बीच व्यवधान पंत जी के भीतर बना ही रहा। कवि के मन में आदर्श और यथार्थ की चिन्तन-धाराओं का संघर्ष तथा मंथन चलता रहा। डॉ.. नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है,

"मार्क्सवाद में श्री सुमित्रानंदन पंत का व्यक्तित्व अपनी वास्तविक अभिव्यक्ति नहीं पा सकता।"

शीघ्र जी फिर वे अपने परिचित पथ पर लौट आये। मार्क्सवाद का भौतिक संघर्ष और निरीश्वरवाद पंत जैसे कोमलप्राण व्यक्ति का परितोष नहीं कर सकते थे। काव्य यात्रा के तीसरे चरण की रचनाओं 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'युग पथ', 'अतिमा', 'उत्तरा' में वे महर्षि अरविन्द से प्रभावित होकर आध्यात्मिक समन्वयवाद की ओर बढ़ते दिखते हैं। कवि की अनुभूति वस्तु जगत को समेटती हुई उस बौद्धिक चेतना से ऊपर उठकर एक सूक्ष्म अतिमानवीय चेतना को ग्रहण करती लगती है।

सामाजिक जीवन से कहीं महत अंतर्मन,
वृहत् विश्व इतिहास, चेतना गीता किंतु चिरंतन।

इस चरण को पंत जी के चेतना-काव्य का चरण कहा जा सकता है। इसमें उन्होंने मानवता के व्यापक सांस्कृतिक समन्वय की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

भू-रचना का भूतिपाद युग हुआ विश्व इतिहास में उदित,
सहिष्णुता सद्भाव शान्ति से हों गत संस्कृति धर्म समन्वित।

पंत जी की काव्य यात्रा का चौथा चरण 'कला और बूढ़ा चांद' से लेकर 'लोकायतन' तक की है। इसमे उनकी चेतना मानवतावाद, खासकर विश्व मानवता की ओर प्रवृत्त हुई है। इन रचनाओं में लोक-मंगल के लिए कवि व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्य के महत्त्व को रेखांकित करता है।

हमें विश्व-संस्कृति रे, भू पर करनी आज प्रतिष्ठित,
मनुष्यत्व के नव द्रव्यों से मानस-उर कर निर्मित।

'लोकायतन' कविवर पंत के लोक-कल्याण संबंधी नेक इरादे का भव्य एवं कलात्मक साक्षात्कार कराता है। अरविन्द दर्शन से प्रभावित होकर पंत की चेतना इस चरण में फिर से वापस लौटकर अपने प्रथम चरण की चेतना से जुड़

जाती है। अरविन्द दर्शन के प्रभाव में आने के बाद पंत को भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय का एक ठोस आधार प्राप्त हो गया।

समग्र रूप से देखें तो पाते हैं कि कवि के चिंतन में अस्थिरता है। निराला और पंत की जीवन-दृष्टि और काव्य-चेतना की तुलना करें तो हम पाते हैं कि निराला की जीवन-दृष्टि का लगातार एक निश्चित दिशा में विकास होता है जबकि पंत का दृष्टि विकास एक दिशा में न होकर उसमें कई मोड़ आते हैं। कभी वे प्रकृति में रमे रहते हैं तो कभी मार्क्सवाद, अरविन्द दर्शन और गांधीवाद की गलियों के चक्कर लगाते हैं। 'ग्रंथि' से 'पल्लव' और 'पल्लव' से 'गुंजन', 'ज्योत्सना' और 'युगांत' में वे क्रमशः शरीर से मन और मन से आत्मा की ओर बढ़ रहे थे। बीच में 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में आत्म-सत्य की अपेक्षा वस्तु-सत्य पर बल देते हैं। 'स्वर्ण-किरण', और 'स्वर्ण-धूलि' में फिर से वे आत्मा की ओर मुड़ जाते हैं।

फिर भी 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र' जैसी रचनाओं द्वारा पंत जी छायावादी काव्य-धारा को सम्पन्न बनाया। वे छायावादी कविता के अनुपम शिल्पी हैं। उनकी भाषा में कोमलता और मृदुलता है। हिन्दी खड़ी बोली के परिष्कृत रूप को अधिक सजाने-संवारने में इनका योगदान उल्लेखनीय है। भाषा में नाद व्यंजना, प्रवाह, लय, उच्चारण की सहजता, श्रुति मधुरता आदि का अद्‌भुत सामंजस्य हुआ है। शैली ऐसी है जिसमें प्रकृति का मानवीकरण हुआ है। भावों की समुचित अभिव्यक्ति के लिए अत्यंत सहज अलंकार विधान का सृजन उन्होंने किया। नये उपमानों का चयन इनकी प्रमुख विशेषता है। उनकी कविताओं में प्राकृतिक उपमानों का सर्वथा एक नया रूप देखने को मिलता है। जैसे

"पौ फटते, सीपियाँ नील से
गलित मोतियां कान्ति निखरती"

या

"गंध गुँथी रेशमी वायु"

या

"संध्या पालनों में झुला सुनहले युग प्रभात"

इसी तरह उन्होंने छाया को, "परहित वसना", "भू-पतिता" "व्रज वनिता" "नियति वंचिता" "आश्रय रहिता" "पद दलिता" "द्रुपद सुता-सी" कहा है। इस तरह उन्होंने भाषा को एक नया अर्थ-संस्कार दिया।

ध्वन्यार्थ व्यंजना, लाक्षणिक और प्रतीकात्मक शैली के उपयोग द्वारा उन्होंने अपनी विषय-वस्तु को अत्यंत संप्रेषणीय बनाया है। शिल्प इनका निजी है। पंत जी की भाषा शैली भावानुकूल, वातावरण के चित्रण में अत्यंत सक्षम और समुचित प्रभावोत्पादन की दृष्टि से अत्यंत सफल मानी जा सकती है।

उनका व्यक्तित्व भी आकर्षण का केंद्र बिंदु था, गौर वर्ण, सुंदर सौम्य मुखाकृति, लंबे घुंघराले बाल, ऊँची नाजुक कवि का प्रतीक समा शारीरिक सौष्ठव उन्हें सभी से अलग मुखरित करता था। आकर्षक और कोमल व्यक्तित्व के धनी कविवर सुमित्रानंदन पंत जिस तरह से अपने जीवन काल में सभी के लिए प्रिय थे उसी तरह से आज भी आकर्षण का केंद्र हैं। प्रकृति का परिवर्तित रूप सदा पंत जी में नित नीवन कौतूहल पैदा करता रहा। उन्होंने सब कुछ प्रकृति में और सब में प्रकृति का दर्शन किया। यही कारण है कि वे प्रकृति के सुकुमार चितेरे थे और अंत में शास्वत सत्य की जिज्ञासा उन्हें अरविंद दर्शन, स्वामी रामकृष्ण आदि के विचारों की ओर खींच ले गई। इस प्रकार उन्होंने काव्य सृजन से वे चारों पुरुषार्थ उपलब्ध किए जो काव्य का फल हैं।

2

सुमित्रानंदन पंत का प्रकृति

कविवर सुमित्रानंदन पंत छायावादी काव्यधारा के सर्वथा अनूठे और विशिष्ट कवि हैं। सुमित्रानंदन पंत जी को छायावाद का चौथा स्तंभ माना जाता है। दूसरे शब्दों में कविवर सुमित्रानंदन पंत का छायावादी काव्यधारा को संवारने बनाने में अद्‌भुत योगदान है। छायावादी काव्यधारा को एक नई गति देने में सुमित्रानंदन पंत की भूमिका उल्लेखनीय रही है।

सुमित्रानंदन पंत के काव्य की सर्वोपरि विशेषता यह है कि विषय-वस्तु की भिन्नता होने पर भी उनमें कल्पना की स्वच्छंद उड़ान, प्रकृति के प्रति आकर्षण और प्रकृति एवं मानव जीवन के कोमल और सरस पक्षों के प्रति अटूट आग्रह है। अपने काव्य में कल्पना के महत्त्व को बताते हुए सुमित्रानंदन पंत ने लिखा है–

"मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूं, मेरी कल्पना को जिन-जिन विचारधाराओं से प्रेरणा मिली है, उन सब का समीकरण करने की मैंने चेष्टा की है। मेरा विचार है कि "वीणा" से लेकर "ग्राम्या" तक अपनी सभी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है।"

सुमित्रानंदन पंत जी का मानना है कि जब उन्होंने कविता लिखना आरंभ किया था, तब वह काव्य की मानव जीवन में क्या उपयोगिता है नहीं जानते थे। और वह यह कहते थे कि ना मैं यही जानता था कि उस समय काव्य जगत में कौन-सी शक्तियां कार्य कर रही थी। जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को जलाता है उसी प्रकार द्विवेदी युग के कवियों की कृतियों ने उनके हृदय को अपने सौंदर्य से स्पर्श किया और उसमें एक प्रेरणा की शिखा जगा दी।

सुमित्रानंदन पंत का जन्म उत्तर भारत के जनपद के कसौनी में हुआ कसौनी जनपद प्रकृति की सुंदरता के बीच बसा हुआ है। कसौनी की उन जुगनुओं की जगमगाती हुई एकांत घाटी का अवाक् सौंदर्य, उनकी रचनाओं में अनेक विस्मय-भरी और भावनाओं में प्रकट हुआ है–

"उस फैली हरियाली में
कौन अकेली खेल रही मां,
वह अपनी वय वाली में?"

उषा, संध्या, फूल, कपोल, कलरव, औसो के वन और नदी निर्झर उनके एकांकी किशोर मन को सदैव अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं, और सौंदर्य के अनेक सद्य:स्फूर्त उपकरणों से प्रकृति की मनोरम मूर्ति रच कर उनकी कल्पना समय-समय उसे काव्य मंदिर में प्रतिष्ठित करती रहती है।उन्होंने प्रकृति वर्णन की प्रेरणा स्रोत कसौनी का वर्णन भी अपने एक कवि की पंक्ति में बड़े ही मनोरम तरीके से किया है–

"आरोही हिमगिरी चरणों पर
रहा ग्राम वह मरकत मणिकण
श्रद्धानत-आरोहण के प्रति
मुग्ध प्रकृति का आत्म-समर्पण
सांझ-प्रात: स्वर्णिम शिखरों से
द्वाभायें बरसाती वैभव
ध्यानमग्न नि:स्वर निसर्ग निज
दिव्य रूप का करता अनुभव।"

सुमित्रानंदन पंत का प्रकृति चित्रण

छायावादी कविता की एक प्रमुख विशेषता रही है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता इसके लिए इस धारा के कवियों ने अपनी आत्मनिर्भर अभि व्यक्ति के लिए स्वच्छंद कल्पना और प्रकृति का सहारा लिया। पंत के काव्य में प्रकृति के प्रति अपार प्रेम और कल्पना की ऊंची उड़ान है। सुमित्रानंदन पंत को अपने परिवेश से ही प्रकृति प्रेम प्राप्त हुआ है। पंत के काव्य में प्रकृति के प्रति अपार प्रेम और कल्पना की ऊंची उड़ान है।

सुमित्रानंदन पंत को अपने परिवेश से ही प्रकृति प्रेम प्राप्त हुआ है अपने प्रकृति परिवेश के विषय में उन्होंने लिखा है–"कविता की प्रेरणा मुझे सबसे

पहले प्रकृति निरक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कुमाचल प्रदेश को है कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है मैं घंटों एकांत में बैठा प्रकृति दृश्य को एकटक देखा करता था।

"यह प्राकृतिक परिवेश किसी अन्य छायावादी कवि को नहीं मिला था सुमित्रानंदन पंत का यह साहचर्य प्रकृति प्रेम उन की प्रथम रचना "वीणा" से लेकर "लोकायतन" नामक महाकाव्य तक समान रूप से देखा जा सकता है। अपने कवि जीवन के आरंभिक दौर में पंत प्राकृतिक सौंदर्य से इतने अभिभूत थे कि नारी सौंदर्य के आकर्षण को भी उसके सम्मुख न्यून मान लिया था–

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल-जाल में
उलझा दूं में कैसे लोचन ?

सुमित्रानंदन पंत के यहां प्रकृति निर्जीव जड़ वस्तु होकर एक साकार और सजीव सत्ता के रूप में उपस्थित हुई है, उसका एक-एक अणु प्रत्येक उपकरण कभी मन में जिज्ञासा उत्पन्न करता है संध्या, प्रातः, बादल, वर्षा, वसंत, नदी, निर्झर, भ्रमर, तितली, पक्षी आदि सभी उसके मन और को आंदोलित करते हैं। यहां संध्या का एक जिज्ञासा पूर्ण चित्र दर्शनीय है–

"कौन तुम रूपसी कौन
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज माया में छवि आप
सुनहला फैला केश कलाप
मंत्र मधुर मृदु मौन,

इस पूरी कविता में संध्या को एक आकर्षक युवती के रूप में मौन मंथर गति से पृथ्वी पर पदार्पण करते हुए दिखा कर कवि ने संध्या का मानवीकरण किया है। प्रकृति का यह मानवीकरण छायावादी काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। चांदनी, बादल, छाया, ज्योत्स्ना, किरण आदि प्रकृति से संबंधित अनेक विषयों पर सुमित्रानंदन पंत ने स्वतंत्र रूप से कविताएं लिखी है, इनमें प्रकृति के दुर्लभ मनोरम चित्र प्रस्तुत हुए हैं।

सुमित्रानंदन पंत की बहुत-सी प्रकृति संबंधी कविताओं में उनकी जिज्ञासा भावना के साथ ही रहस्य भावना भी व्यक्त हुई है। "प्रथम रश्मि", "मौन निमंत्रण" आदि जैसे बहुत-सी कविताएं तो मात्र जिज्ञासा भाव को व्यक्त करती

है। इसके लिए "प्रथम रश्मि" का एक उदाहरण पर्याप्त होगा–

"प्रथम रश्मि का आना रंगीनी
तूने कैसे पहचाना
कहां-कहां है बाल विहंगिणी
पाया तूने यह गाना।"

इसी तरह "मौन निमंत्रण" में भी कवि की किशोरावस्था की जिज्ञासा ही प्रमुख है, लेकिन सुमित्रानंदन पंत की प्रकृति से संबंधित ऐसी बहुत-सी कविताएं भी है जिनमें उनके गहन एवं सूक्ष्म निरीक्षण के साथ ही इनकी आध्यात्मिक मान्यता भी व्यक्त हुई है। इस दृष्टि से "नौका विहार", "एक तारा" आदि कविताएं विशेष उल्लेखनीय है। यहां उदाहरण के लिए संध्या का एक चित्र है-

"गंगा के जल चल में निर्मल कुम्हला किरणों का रक्तोपल
है मूंद चुका अपने मृदु दल
लहरों पर स्वर्ण रेखा सुंदर पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर।"

यहां गंगा के जल में रक्तोपल (लाल कमल) के समान सूर्य के बिंब का डूबना और गंगा की लहरों पर संध्या की सुनहरी आभा का धीरे-धीरे नीलिमा में परिवर्तित होना आदि कवि के सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण का और उनकी गहन रंग चेतना का परिचायक है। लेकिन कविता के अंत में कवि ने एक तारे के बाद बहुत से तारों के उदय को आत्मा और यह जग दर्शन कह कर "एकोहम बहुस्यामि" की दार्शनिक मान्यता को भी प्रतिपादित कर दिया है। इसी तरह "नौका विहार" में भी कवि ने ग्रीष्मकालीन गंगा का एक तापस बाला के रूप में भावभीना चित्रण करते हुए अंत में जगत की शाश्वतता का स्पष्ट संकेत दिया है।

पंत का लगाव प्रकृति के कोमल और मनोरम स्वरूप के प्रति ही अधिक रहा है, लेकिन कभी कभार इनकी दृष्टि यथार्थ से प्रेरित होकर प्रकृति के कठोर रूप की और भी गई है। वर्षा कालीन रात्रि का एक चित्र है–

"पपीहों की यह पीन पुकार, निर्झरों की भारी झरझर
झींगुरों की झीनी झंकार, घनो की गुरु गंभीर घहर
बिंदुओं की छनती झनकार, दादूरों के वे दूहरे स्वर।"

इसी प्रकार वायु वेग से झकझोर गए भीम आकार नीम के वृक्ष की स्थिति को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

"झूम-झूम झुक-झुक कर, भीम नीम तरु निर्भर
सिहर-सिहर थर-थर-थर करता सर-मर चर-मर।"

अपनी "कलरव" शीर्षक कविता में पंत जी ने संध्या का यथार्थ किंतु अत्यंत भाव प्रवण चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

"बांसों का झुरमुट/संध्या का छुट-पुट, है चहक रही चिड़िया टी वी टी टी टूट-टूट ये नाम रहे निज घर का मग कुछ भ्रमजीवी धर डगमग डग माटी है जीवन भारी पग।"

यहां बांसों के झुरमुट में चहकती हुई चिड़ियों और भारी पग तथा उदास मन से अपने घरों को लौटने वाले मजदूरों की विरोधपूर्ण स्थिति के माध्यम से कवि ने संध्या का अत्यंत व्यंजक स्वरूप प्रस्तुत किया है। प्रकृति विषयक दृष्टिकोण को प्रकट करते हुए पंत जी आधुनिक कवि के पर्यायलोचन में लिखते हैं–

"साधारणता प्रकृति के सुंदर रूप ही ने मुझे अधिक लुभाया है।" स्पष्ट है कि पंत को प्रकृति का सुंदर रूप ही अत्यधिक आकर्षक लगा है और उसी का काव्य में उपयोग भी किया है। प्रकृति का सुंदर रूप ग्रहण करने के कारण ही पंत जी में मनन एवं चिंतन की शक्ति आई और वे हिंदी साहित्य को स्वर्ण काव्य प्रदान कर सके। यदि उन्हें बाढ़ और उल्का की प्रकृति से लगाव होता है तो, निश्चय ही वह निराशावादी होते।

पंत जैसा स्वर्ण काव्य किसी निराश मानस से अद्‌भुत नहीं हो सकता था, यह सत्य है कि प्रकृति का उग्र रूप मुझे कम रुचिता है यदि में संघर्ष प्रिय अथवा निराशावादी होता तो "नेचर रेड इन टूथ एंड कलाऊ" वाला कठोर रूप जो जीव विज्ञान का सत्य है मुझे अपनी और अधिक खींचता है। पंत जी के काव्य में प्रकृति चित्रण विभिन्न रूपों में मिलता है।

आलंबन रूप

जब प्रकृति में किसी प्रकार की भावना का अध्याहार न कर प्रकृति का ज्यों का त्यों वर्णन किया जाता है। तो वह आलंबन रूप होता है, पंत जी के काव्य में प्रकृति चित्रण का यह रूप पर्याप्त मिलता है–

"गिरि का गौरव गाकर हग्ग फर-फर मंद में नस-नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों से सुंदर झड़ते हैं झाग भरे निर्झर।"

उद्दीपन रूप

प्रकृति व्यक्ति की भावनाओं को भी उदीप्त करती है। उसका वह उद्दीपन रूप होता है उस रूप में प्रकृति का वर्णन बहुत ही अधिक हुआ है विशेषतया विरह काव्य में।

अलंकारिक रूप

इस रूप में प्रकृति का उपयोग अलंकारों के प्रयोग के लिए किया जाता है–

"मेरा पावस ऋतु जीवन
मानस-सा उमड़ा अपार मन
गहरे धुंधले धुले सांवले
मेघों से मेरे भरे नयन।"

पृष्ठभूमि के रूप में

भावनाओं को अधिक प्रभुविष्णु बनाने के लिए प्रकृति का पृष्ठभूमि के रूप में वर्णन किया जाता है। पंत काव्य में ऐसे असंख्य पद है जहां इस रूप का प्रयोग किया गया है "ग्रंथि एक तारा", "नौका विहार" आदि कविताएं इसी रूप के उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा सकती है।

रहस्यात्मक रूप

प्रकृति में रहस्य भावना का आरोप करना छायावाद की प्रमुख विशेषता है। अंत में भी यह भावना उपलब्ध होती है–

"क्षुब्ध जल शिखरों को जब बात सिंधु में मथकर फेनाकर
बुलबुलों का व्याकुल संसार बना, बिथुरा देनी अज्ञात
उठा तब लहरों से कर कौन न जाने मुझे बुलाता मौन।"

दार्शनिक उद्‌भावना

प्रकृति के माध्यम से गंभीर दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति भी की जाती है सुमित्रानंदन पंत जी की" नौका विहार" और "एक तारा" आदि कविताएं ऐसी ही है। "एक तारा" के अंत में सुमित्रानंदन पंत ने इन पंक्तियों में दार्शनिक उद्‌भावना की है–

जगमग-जगमग नभ का आंगन
लग गया कुंद कलियों से धन
वह आत्म और यह जग-दर्शन।"

मानवीकरण

प्रकृति में चेतन सत्ता का आरोपण ही मानवीकरण कहलाता है। छायावादी काव्य में प्रकृति को एक चेतन सत्ता के रूप में ही देखा जाता है, जड़ के रूप में नहीं। छायावाद प्रकृति के इस रूप को विशेषत: अपनाकर चला है। "संध्या" कविता में कवि संध्या को नव-युवती के रूप में चित्रित किया है–

"कहो तुम रूपसी कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी नीज छाया छबी में आप
सुनहला फैला केश कलाप
मधुर, मंथर, मृदु, मौन।"

नारी रूप

प्रकृति का कोमल रूप ग्रहण करने के कारण ही पंत जी ने प्रकृति को नारी रूप में देखा है। "चांदनी" कविता में वह चांदनी का वर्णन किस प्रकार करते हैं–

"नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद-हंसिनी
मृदु करतल पर शशि मुख धर निरब अनिमिय एकाकिनी।"

उपदेशात्मक

उपदेश के लिए प्रकृति का प्रयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है। गोस्वामी तुलसीदास के वर्षा ऋतु वर्णन में यही प्रणाली तो अपनाई गई है–

"बूंद अघात सहे गिरी कैसे खल के वचन संत सहे जेसे।"

निष्कर्ष

पंत के काव्य में प्रकृति के विभिन्न रूप मिलते हैं, जो छायावादी काव्य की विशेषता है। प्रकृति के प्रति सुकुमार दृष्टिकोण पंत जी की अपनी निजी विशेषता है। पंडित जी छायावादी कवि थे, अत: छायावादी काव्य चेतना का

संघर्ष मध्ययुगीन निर्मम निर्जीव जीवन परिपाटियों से था, जो कुरूप छाया तथा घिनौनी काई की तरह युग मानस के दर्पण पर छाई हुई थी।

और शूद्र जटिल नैतिक सांप्रदायिकता के रूप में आकाश लता की तरह लिपट कर मन में आतंक जमाए हुई थी। दूसरा संघर्ष छायावादी चेतना का था।

उपनिषदों के दर्शन के पुनर्जागरण के युग में उनका ठीक-ठीक अभिप्राय ग्रहण करने का वाक्य आत्म-प्राण, विद्या-अविद्या, शाश्वत अनंत अक्षर-अक्षर सत्य आदि मूल्य एवं प्रतीकों का अर्थ समझ कर उन्हें युग मानस का उपयोगी अंग बनाना और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनके बाहरी विरोधियों को सुलझा कर उनमें सामंजस्य बिठाना।

यह सब अत्यंत गंभीर और आवश्यक समस्याएं थी, जिनके भूल-भुलैया से बाहर निकलकर कृतिकार का मुख्य रूप से सृजनकर्ता था। सदियों से निष्क्रिय विशेषण एवं जीवन विमुख लोकमानस को आशा सौंदर्य जीवन प्रेम श्रद्धा अवस्था आदि का भाव काव्य देकर उस में नया प्रकाश उड़ेलना था। छायावाद मुख्यता प्रेरणा का काव्य रहा है और इसलिए वह कल्पना प्रधान भी रहा।

3

सुमित्रानन्दन पंत की रचनाएँ

युगपथ -सुमित्रानन्दन पंत

युगपथ सुमित्रानन्दन पंत की 1948 ई. में प्रकाशित रचना है। सुमित्रानन्दन पंत का नवाँ काव्य-संकलन है। इसका पहला भाग 'युगांत' का नवीन और परिवर्द्धित संस्करण है। दूसरे भाग का नाम 'युगांतर' रखा गया है, जिसमें कवि की नवीन रचनाएँ संकलित हैं। अधिकांश रचनाएँ गाँधी जी के निधन पर उनकी पुण्य स्मृति के प्रति श्रद्धांजलियाँ हैं। शेष रचनाओं में कवीन्द्र रवीन्द्र, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और अरविन्द घोष के प्रति लिखी गयी प्रशस्तियाँ भी मिलती हैं। अनेक रचनाओं पर कवि के अरविन्द-साहित्य के अध्ययन की छाप स्पष्ट है। अंतिम रचना 'त्रिवेणी' ध्वनि-रूपक है, जिसमें गंगा, यमुना और सरस्वती को तीन विचार धाराओं का प्रतिनिधि मानकर उनके संगम में मानव-मात्र के कल्याण की कल्पना की गयी है।

युगपथ का आकर्षण

'युगपथ' का सबसे बड़ा आकर्षण 'श्रद्धा के फूल' शीर्षक सोलह रचनाएँ हैं, जिसमें कवि ने बापू के मरण में अभिनव जीवनकल्प की कल्पना की है, और इन्हें अपराजित अहिंसा की ज्योतिर्मयी प्रतिमा के रूप में अंकित किया है। गांधी जी के महान् व्यक्तित्व और कृतित्त्व को सोलह रचनाओं में समेट लेना कठिन है और 'युगांत' तथा 'युगवाणी' में पंत ने उनके तथा उनकी विचारधारा को कवि-हृदय की अपार सहानुभूति देकर चित्रित किया है। परंतु इन सोलह

रचनाओं में बापू को श्रद्धांजलि देते हुए कवि काव्य, कला और संवेदना के उच्चतम शिखर पर पहुँच जाता है फिर शोक-भावना से अभिभूत, परंतु अंत में वह उनकी मृत्यु को 'प्रथम अहिंसक मानव' के बलिदान के रूप में चित्रित कर उनकी महामानवता की विजय घोषित करता है। वह शुभ्र पुरुष (स्वर्ण पुरुष) के रूप में बापू का अभिनन्दन करता और उन्हें भारत की आत्मा मानकर देश को दिव्य जागरण के लिए आहूत करता है। यह सोलह प्रशस्ति-गीतियाँ कवि की 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' साधना की प्रतिनिधि हैं।

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति पर उद्‌बोधन

संकलन की कुछ अन्य रचनाएँ भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति पर उद्‌बोधन अथवा जय-गीत के रूप में सामने आती है। कवि भारत को विश्व की स्वाधीन चेतना का प्रतीक मानता है और उसके स्वातंत्य में युग-परिवर्तन की कल्पना करता है। राष्ट्रोन्नति का पर्व उसके लिए 'दीपपर्व' बन जाता है और 'दीपलोक' एवं 'दीपश्री' प्रभृति रचनाओं में वह मृण्मय दीपों में भू-चेतना की निष्कम्प शिखा जलती देखता है।

सबसे सशक्त रचना

गांधी जी की पुण्य स्मृति में लिखी रचनाओं के बाद इस संकलन की सबसे सशक्त रचना 'कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति' है। कविता काफी लम्बी है परंतु कवि अंत तक भावना और विचरणा की उच्च भूमि पर स्थित रह सका है।

भारत की सांस्कृतिक मेघा में आस्था

रचना के अंत में कवि अंतर्मन की सूक्ष्म संगठन की दुहाई देता हुआ भारत की सांस्कृतिक मेघा के प्रति अपनी आस्था प्रकट करता है और कवीन्द्र के आशीर्वाद का आकांक्षी बनता है।

युगांत -सुमित्रानन्दन पंत

सुमित्रानन्दन पंत के काव्य संकलन युगांत का प्रकाशन 1936 में हुआ। यह सुमित्रानन्दन पंत का चौथा काव्य-संकलन है, जिसमें 1934 ई. से लेकर 1936 ई. तक की उनकी तैंतीस छोटी-बड़ी रचनाएँ संकलित हैं। इस रचना की भूमिका

में पंत ने अपनी काव्यकला के नये मोड़ की अपने शब्दों में ही सूचना दी है। वे कहते हैं–

'युगांत' में 'पल्लव' की कोमलकांत कला का अभाव है। इसमें मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्य में उसै मैं अधिक परिपूर्ण रूप में ग्रहण एवं प्रदान कर सकूँगा।'

गान्धीवादी विचारधारा

एक प्रकार से हम इसे सन्धिकालीन रचना कह सकते हैं, जिसमें गान्धीवादी विचार धारा को स्पष्ट रूप से आधार बनाया गया है। बाद में यह रचना 'युगपथ' (1948) के प्रथम भाग के रूप में प्रकाशित हुई। इस नये संस्करण में 'युगांत' वाले अंश में कुछ नवीन कविताएँ भी सम्मिलित कर दी गयीं।

सर्वश्रेष्ठ रचना 'बापू के प्रति'

1934–1966 ई. का यह सन्धि–काल पंत के लिए हृदय मंथन का समय है। इसमें गांधी जी के नेतृत्व में देश ने निर्माण–क्षेत्र में नये प्रयोग किये। स्वयं गांधी जी देश की जन–शक्ति के प्रतीक बने। सत्याग्रह–संग्राम की विफलता ने भी उनके महामानवीय व्यक्तित्व को नयी तेजस्विता दी। इसीलिए इस संकलन की सर्वश्रेष्ठ रचना 'बापू के प्रति' में कवि ने उन्हें अपनी शतशः प्रणीत दी। यह रचना गांधी–दर्शन की जाज्वल्यमान मणि है। संकलन की अधिकांश रचनाएँ कवि के मानव–प्रेम से ओत–प्रोत हैं और स्वयं गांधी जी में वह मानव की परिपूर्णता के ही दर्शन करता है।

प्रकृति

संकलन में प्रकृति सम्बन्धी अनेक रचनाएँ हैं, जो कवि के ऐश्वर्यशील कल्पनापूर्ण मनोयोग की उपज हैं परंतु उनमें अभिव्यंजना का नया स्वरूप दिखलाई देता है। इन रचनाओं में हम 'गुंजन' की प्रकृति–चेतना का ही प्रसार देखते हैं, परंतु यह स्पष्ट है कि कवि पर चिंतन की छाया बढ़ती जा रही है और उसकी सौन्दर्य–सृष्टि मानव के प्रति करुणा से संचालित तथा मंगल–भावना से निष्पन्न है।

'ताज' शीर्षक रचना

'ताज' शीर्षक रचना में कवि ताजमहल के अपार्थिव सौन्दर्य में बह नहीं जाता क्योंकि ताज उसके लिए गत युग के मृत आदर्शों का प्रतीक बन गया है, जो मानव के मोहान्ध हृदय में घर किये हुए हैं। तात्पर्य यह है कि 'युगांत' की यह रचना प्रकृति और सौन्दर्य के प्रति कवि की नयी मानववादी दृष्टि की देन है।

युगवाणी

युगवाणी का प्रकाशन 1939 ई. में हुआ। यह सुमित्रानन्दन पंत का पाँचवाँ काव्य-संकलन है। कवि ने उसे 'गीत-गद्य' कहा है और 'विज्ञापन' में स्पष्ट कर दिया है- 'मैंने युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न किया है। यदि युग की मनोवृत्ति का किंचित्मात्र आभास इनमें मिल सका तो मैं अपने प्रयास को विफल नहीं समझूँगा।' 'दृष्टिपात' (भूमिका) में कवि ने इस संकलन की रचनाओं पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला है। उसके अनुसार प्राकृतिक रचनाओं को छोड़कर, इस संकलन में मुख्यत: पाँच प्रकार की विचारधाराएँ मिलती हैं -

भूतवाद और अध्यात्मवाद का समंवय, जिससे मनुष्य की चेतना का पथ प्रशस्त बन सके।

समाज में प्रचलित जीवन की मान्यताओं का पर्यावलोचन एवं नवीन संस्कृति के उपकरणों का संग्रह।

पिछले युगों के उन मृत आदर्शों और जीर्ण रूढ़ी रीतियों की तीव्र भत्सना, जो आज मानवता के विकास में बाधक बन रही है।

मार्क्सवाद तथा फ्रायड के प्राणिशास्त्रीय मनोदर्शन के युग की विचारधारा पर प्रभाव, जन समाज का पुन: संगठन एवं दलित लोक समुदाय का जीर्णोद्धार।

बहिर्जीवन के साथ अंतर्जीवन के संगठन की आवश्यकता रागभावना का विकास और नारी जागरण।

गान्धीवादी विचारधारा

इन सूत्रों के सहारे हम 'युगवाणी' के विचार-पक्ष का स्वतंत्र रूप से अध्ययन कर सकते हैं। वास्तविकता यह है कि 'युगवाणी' पंत के जीवन और काव्य के एक निश्चित मोड़ की सूचना देती है, जो उसके आलोचकों के लिए वाद-विवाद तथा स्वीकार-अस्वीकार का प्रश्न रहा है। 'युगवाणी' में कवि

गान्धीवादी विचारधारा के साथ मार्क्स की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारधारा को अपनाता है और जनशक्ति की नवीन कल्पना के साथ समाज-चेतना का अग्रदूत बनकर उपस्थित होता है। उसकी रचनाओं पर बौद्धिकता और अध्ययन की छाप गहन होती जाती है और काव्य के तत्त्वों का ह्रास होता है। जिन लोगों ने पंत को भावुक और कल्पना-प्रवण कवि के रूप में सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति और मानव के गीत गाते देखा था, वे इस अप्रत्याशित परिवर्तन के लिए तैयार नहीं थे। संक्षेप में 'युगवाणी' कवि की उस नयी भावभूमि की उपज है, जो प्रगतिवादी काव्य-धारा के रूप में विकसित हुई है।

गद्यात्मक रचनाएँ

संकलन में 77 प्रगीत-मुक्तक हैं। इनमें अनेक विचाराक्रांत गद्यात्मक रचनाएँ हैं, जिनमें कवि मार्क्सवाद की व्याख्या प्रस्तुत करता है या गान्धीवाद-मार्क्स की तुलनात्मक भूमिका सामने लाता है। 'मार्क्स के प्रति', 'भूतदर्शन', 'साम्राज्यवाद', 'समाजवाद-गांधीवाद', 'धनपति', 'मध्यवर्ग', 'कृषक्', श्रमजीवी', प्रभृति एवं दर्जन रचनाएँ कवि की बुद्धिवादी विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति की देन हैं। इन पर उसके समाजवादी अध्ययन और नयी दीक्षा की छाप है। इनमें हमें मार्क्सवादी जीवन की ऊहात्मक अभिव्यक्ति तथा-कथन के रूप में मिलेगी। परंतु ऐसी रचनाएँ अधिक नहीं हैं और उनके आधार पर पंत के परवर्ती काव्य को काव्य गुणों से एकदम हीन नहीं कहा जा सकता। दूसरी कोटि की रचनाएँ इस विचारणी का भावपक्ष कही जा सकती हैं, जिनमें कवि जन-जीवन, धरती के जीवन, नर-नारी के नये मान तथा नवजागरण के बौद्धिक पक्ष को अपनी कविता का विषय बनाता है। उसकी नयी कर्म जिज्ञासा 'चींटी' और 'घननाद' जैसी रचनाओं में मिलती हैं, जो साम्य पर आधारित जीवन-तंत्र और श्रम को नये मूल्य के रूप में उपस्थित करती है।

नयी जीवन-दृष्टि

'मानव' 'युग-उपकरण' और 'नव-संस्कृति' रचनाओं में कवि की नयी जीवन-दृष्टि पल्लवित हुई है। मार्क्सवाद, भौतिकवाद और श्रम पर आधारित नये वस्तु-दर्शन को कवि नये भू-दर्शन का रूप देता है। 'पुण्यप्रस्' शीर्षक कविता में वह आदर्शोन्मुखी जीवन-चेतना की धरती की ओर लौटने का निमंत्रण देता है।

फ्रायड का दर्शन

छोटे-छोटे अनेक प्रगीतों में कवि दलित-पतित मानवता को नये जीवन के प्रति उन्मुख करता है और उसके भावपूर्ण उद्‌बोधन नव-निर्माण के मंत्र से अभिषिक्त दिखलाई देते हैं। कवि मार्क्स के अर्थशास्त्र से ही प्रभावित नहीं है, वह फ्रायड के कामदर्शन को भी मान्यता देता है और उसे भी अपने नव-तंत्र का अंग बनाता है। अतीन्द्रिय प्रेम के प्रति दुराग्रह और कामवर्जना को वह अतिवाद मानता है। इसीलिए नर-नारी के यौन संबंध की नैसर्गिकता एवं अनिवार्यता पर उसकी दृष्टि जाती है। 'मानव-पशु', 'नारी' और 'नर की छाया' रचनाएँ नारी-मुक्ति और काममुक्ति के नये सन्देश से ओत-प्रोत हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि संकलन को 'बापू' रचना से आरम्भ करता हुआ भी कवि गान्धी-दर्शन से धीरे-धीरे दूर हटता जाता है और वस्तु-जगत् ही उसकी चिंतना एवं भावना का विषय बन जाता है।

नयी क्रांति-चेतना का प्रतीक

कुछ रचनाओं में जैसे 'पलाश', 'पलाश के प्रति' और 'मधु के स्वप्न' में पंत ने रक्तपलाश को अपनी नयी क्रांति-चेतना का प्रतीक मान कर भावपूर्ण प्रकृति-काव्य प्रस्तुत किया है। धरती के प्रति कवि का आकर्षण 'हरीतिमा' शीषर्क कविता में मिलता है, जहाँ कवि हरितवसना धरा के प्रति हमारी सृजन-शक्तियों को प्रेरित करता है परंतु प्रकृति के प्रति उसका दृष्टिकोण मार्क्सवादी ही है क्योंकि उसके विचार में निरुपम मानव की रचना कर प्रकृति हार गयी है और अपनी इस नवीन कृति में उसने पूर्णता प्राप्त कर ली है। फलतः प्रकृति मानव के लिए है, मानव प्रकृति के लिए नहीं। यह स्पष्ट है कि यह नया जीवन-दर्शन कवि के स्वर में नया मार्दव भरता है और उसमें यौवनोचित् दृढ़ता तथा गम्भीरता का प्रसार करता है। तरुण जीवन की कर्मण्यता, साहस तथा नव-निर्माण की आकांक्षा द्वन्द्वात्मक जीवन-बोध के माध्यम से 'युगवाणी' की रचनाओं में स्पष्ट रूप से अभिव्यंजना पा सकी है।

पल्लव

पल्लव भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार सुमित्रानंदन पंत के प्रारम्भिक काव्य-प्रयोगों की परिणति है। यह एक कविता संग्रह है, जिसका प्रकाशन

'राजकमल प्रकाशन' द्वारा किया गया था। इसमें संकलित रचनाओं की संख्या 32 है, जो 1918 ई. से लेकर 1924 ई. तक की कृतियाँ है। 'विज्ञापन' में पंत ने लिखा है कि उसने प्रत्येक वर्ष की 2-3 रचनाएँ ग्रंथ में संग्रहित कर दी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस रचना से पंत के काव्य-विकास की प्रगति स्पष्टत: सूचित होती है। श्रेष्ठतम रचनाएँ अंतिम चार वर्षों (1921-1925 ई.) की कृतियाँ हैं। इनमें कवि रसबोध की परिपूर्णता प्राप्त कर सका है। 'पल्लव' की अंतिम कविता 'परिवर्तन' कवि के जीवन दर्शन तथा काव्य-प्रयास में एक नये मोड़ की सूचना देती है और 'छाया-काल' शीर्षक अंतिम रचना में अब तक के जीवन का आह्वान स्वीकार किया है, इस मंगलाशा साथ कि,

'दिव्य हो भोला बालापन, नव्य जीवन, पर, परिवर्तन।
स्वस्ति, मेरे अनंग नूतन। पुरातन मदन-दहन '

सच तो यह कि 'पल्लव' सुमित्रानंदन पंत की काव्य-प्रतिभा का गौरीशंकर है और काव्य-पारखियों ने उसे इसी रूप में ग्रहण किया है। कल्पना, कला, मूर्तिमान, भाषा - माधुर्य तथा अभिव्यंजना की प्रौढ़ता में पंत ने इस संकलन में अपनी सभी पहली रचनाओं को पीछे छोड़ दिया है। इस ग्रंथ को हम पंत के कल्पनाशील किशोर जीवन का सर्वोच्च उत्कर्ष कह सकते हैं।

पल्लव में संकलित कविताएँ

'पल्लव' की रचनाओं को हम कई श्रेणियों में रख सकते हैं -

प्रथम श्रेणी

पहली श्रेणी विप्रलम्भ-प्रधान रचनाओं की है, जिनमें 'उच्छ्वास' (1922), 'आँसू' (1921), 'स्मृति' (1922) शीर्षक रचनाएँ आती हैं। इनमें 'उच्छ्वास' कवि की पहली प्रकाशित रचना भी है। इन रचनाओं को हम 'ग्रंथि' की भाव-भूमि से जोड़ सकते हैं यद्यपि अभिव्यंजना के क्षेत्र में ये उससे कहीं आगे बढ़ी रचनाएँ हैं। 'पल्लव' के 'प्रवेश' (भूमिका) में कवि ने 'आँसू' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर नयी भूमि भी मिलती है। इन्हीं रचनाओं के आधार पर प्रारम्भिक समीक्षकों ने पंत को विप्रलम्भ का कवि कहा है और उसके काव्य में उसी की पंक्तियों-'वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा गान।' को रचनाओं चरितार्थ करने का प्रयत्न किया है।

द्वितीय श्रेणी

हम खड़ी बोली से अपरिचित हैं, उसमें हमने अपने प्राणों का संगीत अभी नहीं भरा, उसके शब्द हमारे हृदय के मधु से सिक्त होकर अभी सरस नहीं हुए, वे केवल नाम मात्र हैं, उनमें हमें रूप-रस गंध भरना होगा। उनकी आत्मा से अभी हमारी आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ, उनके स्पन्दन से हमारा स्पन्दन नहीं मिला, वे अभी हमारे मनोवेगों के चिरालिंगन-पाश में नहीं बँधे, इसीलिए उनका स्पर्श अभी हमें रोमांचित नहीं करता, वे हमें रसहीन, गन्धहीन लगते हैं। जिस प्रकार बड़ी चुवाने से पहले उड़द की पीठी को मथ कर हलका तथा कोमल कर लेना पड़ता है, उसी प्रकार कविता से स्वरूप में भावों के ढाँचे में, ढालने के पूर्व भाषा को भी हृदय के ताप में गला कर कोमल, करुण, सरस, प्रांजल कर लेना पड़ता है।

-पंत

दूसरी श्रेणी की रचनाएँ 'वीणा' काल की अवशिष्ट रचनाएँ हैं। ये रचनाएँ हैं 'विनय', 'वसंतश्री', 'मुस्कान', 'निर्झर-गान', 'सोने का गान', 'निर्झरी', आकांक्षा', 'याचना' और 'स्याही की बूँद'। इनमें हमें बालकवि का स्वप्न-विलास और तुतला कण्ठस्वर ही अधिक मिलता है। सरस, प्रसादिक भावाभिव्यक्ति से लेकर 'स्याही की बूँद' रचना की दुरूह कल्पना तक, जो काव्य-क्रीड़ा जैसी लगती है, इन रचनाओं का भावजगत फैला है। जिज्ञासा, वैचित्र्य, अद्‌भूत के प्रति आकर्षण और कोमलता की साधना का वैशिष्टय इन रचनाओं को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करता है परंतु इन रचनाओं में कवि का किशोर कण्ठ अभी फूटा नहीं है।

तृतीय श्रेणी

तीसरी कोटि की रचनाएँ 'परिवर्तन' को छोड़ कर शेष रचनाएँ हैं, जिन्हें पूर्व पंत की श्रेष्ठतम कृतियाँ कहा जा सकता है। इन रचनाओं में अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों, विशेषत: वर्डस्वर्थ और शेली की रचनाओं से स्पर्द्धा स्पष्ट रूप में दिखलाई देती है। कल्पना का अबाध और अप्रतिहत प्रवाह इन रचनाओं की विशेषता है। इससे जहाँ भावोन्मुक्ति की सूचना मिलती है, वही किशोर कवि के दुस्साहस और असंयम का भी पता चलता है। 'छायावाद' शब्द से यही रचनाएँ परिलक्षित थीं, जिनमें द्विवेदी युग का प्रसार माना है परंतु 'प्रवेश' में उनका विद्रोह और चुनौती का भाव भी स्पष्ट हो जाता है। इन रचनाओं में जहाँ चित्रमय

भाषा-शैली और स्वरात्मक माधुर्य का नया वैभव है, वहाँ भावों की कोमलता और नवीनता भी दृष्टव्य है। 'बीचिविलास', 'अनंग', 'नक्षत्र', 'स्वप्न' और 'छाया' इस स्वच्छन्दतावाद में अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ पल्लवित हुआ है। इनके अतिरिक्त 'मौन निमंत्रण', 'विश्वछवि' और 'विश्वव्याप्ति' जैसी रचनाओं में कवि अद्‌भुत और प्रकृति का अंचल पकड़ कर रहस्यवाद की अवतारण करता है और अपने प्राकृतिक संवेदनों में अतीन्द्रिय रहस्यलोक का संकेत देता है। 'मौन-निमंत्रण' पंत की अत्यंत लोकप्रिय कविता है, जिसमें प्रकृति के माध्यम से रहस्यसत्ता की व्यंजना की गयी है। ये सभी रचनाएँ प्रकृति-व्यापार को विषय बनाती हैं परंतु कवि शीघ्र ही बाह्य प्रकृति का आलम्बन छोड़कर कल्पित रूप जगत में खो जाता है। भावसाम्य के आधार पर उसके कल्पना-जगत में असंख्य फूल खिल जाते हैं और उसकी कवि-प्रतिभा किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं मानती। पहली कोटि की रचनाओं में यदि कवि मानवीय प्रेम और वियोग का कवि है तो इस कोटि रचनाओं में वह प्रकृति को भावों से रंग कर नया रूप-रंग और नया सार्थकता देने की अपार क्षमता है।

चतुर्थ श्रेणी

चौथी कोटि का निर्माण 'परिवर्तन' शीर्षक एकमात्र कविता में मिलता है। यह 'पल्लव' की सर्वश्रेष्ठ रचना समझी जाती है परंतु पंत के सम्पूर्ण काव्य में भी यह प्रथम पंक्ति में रहेगी। इस रचना में अनेक स्वतंत्र भावानुबन्ध हैं और पंत सामान्य द्वन्द्वबोध से ऊपर उठकर विराठ चित्रों और गम्भीरतम दार्शनिक विचारणा के क्षेत्र में पहुँच जाता है। इस रचना को हम महाकाव्यात्मक रचना कह सकते हैं। इसी में पंत का कोमल नारी-कण्ठ पहली बार पुरुष-कण्ठ में बदला है। तारुण्य के पंख खोलते हुए पंत ने इस रचना में निस्सीम नीलाकाश में उन्मुक्त उड़ान भरी है।

भाषा और शैली

भाषा और शैली की दृष्टि से 'पल्लव' स्वयं एक अभिनव जगत् है। उसमें संस्कृत के समस्त शब्दकोश को खोज कर मधुर, सानुप्रात तथा साभिप्राय शब्दों का उपयोग हुआ है। 'प्रवेश' में कवि ने लिखा है- 'हम खड़ी बोली से अपरिचित हैं, उसमें हमने अपने प्राणों का संगीत अभी नहीं भरा, उसके शब्द हमारे हृदय के मधु से सिक्त होकर अभी सरस नहीं हुए, वे केवल नाम मात्र

हैं, उनमें हमें रूप-रस गंध भरना होगा। उनकी आत्मा से अभी हमारी आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ, उनके स्पन्दन से हमारा स्पन्दन नहीं मिला, वे अभी हमारे मनोवेगों के चिरालिंगन-पाश में नहीं बँधे, इसीलिए उनका स्पर्श अभी हमें रोमांचित नहीं करता, वे हमें रसहीन, गन्धहीन लगते हैं। जिस प्रकार बड़ी चुवाने से पहले उड़द की पीठी को मथ कर हल्का तथा कोमल कर लेना पड़ता है, उसी प्रकार कविता से स्वरूप में भावों के ढाँचे में, ढालने से पूर्व भाषा को भी हृदय के ताप में गला कर कोमल, करुण, सरस, प्रांजल कर लेना पड़ता है।' इस मंतव्य में स्वयं कवि की स्वर-साधना की झंकार प्रकट है। पुल्लिंग-स्त्रीलिंग प्रयोग तथा संयुक्त क्रियाओं के क्षेत्र में कवि की भावाभिव्यंजना के लिए आयी है। कवि मुक्त-छन्द का समर्थक नहीं है, ऐसा भूमिका से जान पड़ता है, परंतु हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप प्रथित मात्रिक छन्दों को चुन कर उनमें पद-परिवर्तन के द्वारा नयी भावभंगिमा भरने में वह समर्थ सिद्ध हुआ है। संस्कृत की कोमलकांत पदावली का आदर्श सामने रखते हुए पंत ने हिन्दी के कण्ठ की रक्षा की है। छन्द-विधान पर विशेषत: अंग्रेजी काव्य का प्रभाव परिलक्षित है। तात्पर्य यह हैं कि 'पल्लव' के साथ खड़ी बोली के काव्य का कण्ठ फूटता है और वह समर्थ अभिव्यंजना के साहसी अभियान की दिशा में अग्रसर होता है।

पल्लव का महत्त्व

भाषा, छन्द और प्रतीक-विधान के क्षेत्र में नये कवि का दृष्टिकोण द्विवेदी युग के कवि से भिन्न है, इसका दो-टूक पता 'प्रवेश' से लगता है, जिसका आधुनिक काव्य समीक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कॉलेरिज और वर्डस्वर्थ की लिरिकल बैलेड्स की भूमिका की भाँति 'पल्लव' की भूमिका भी काव्य-जगत की ऐतिहासिक घटना है। 'पल्लव' का कवि की रचनाओं में क्या स्थान है, यह विवादग्रस्त प्रश्न है। कुछ विद्वानो के विचार में 'पल्लव' की ऊँचाई पर पंत फिर नहीं उठ सके-वे विचारों और वादों के जगत् में खो गये और उन्होंने अपनी सौन्दर्यावेषी कवि-प्रतिभा को पंगु बना लिया। परंतु 'पल्लव' में पंत की सौन्दर्य दृष्टि प्रकृति पर केन्द्रित थी और यह दृष्टि नये-नये सन्दर्भों से पुष्ट होकर उनके काव्य में बराबर सम्पन्न होती गयी है। उत्तर रचनाओं में उन्होंने अपनी अबाध कल्पना को लगाम दी है। परन्तु उनका भावप्रवाण कल्पनाशील व्यक्तित्व उन्हें तथ्यकथन की ओर निरंतर उबारता रहा है। नि:सन्देह 'पल्लव' में पंत के किशोर

स्वप्न मूर्तिमान हैं और परवर्त्ती काव्य में उसने इन स्वप्नों को जग के सुख-दुख से मांसल बनाना चाहा है। जो हो, वयः सन्धिक, कल्पनाप्रवण और विशुद्धताग्रही काव्य रसिकों के लिए 'पल्लव' छायावाद का सर्वोच्च शिखर ही रहेगा।

1. पल्लव

अरे! ये पल्लव-बाल!
सजा सुमनों के सौरभ-हार
गूँथते वे उपहार,
अभी तो हैं ये नवल-प्रवाल,
नहीं छूटो तरु-डाल,
विश्व पर विस्मित-चितवन डाल,
हिलाते अधर-प्रवाल!
न पत्रों का मर्मरु संगीत,
न पुरुषों का रस, राग, पराग,
एक अस्फुट, अस्पष्ट, अगीत,
सुप्ति की ये स्वप्निल मुसकान,
सरल शिशुओं के शुचि अनुराग,
वन्य विहगों के गान !
हृदय के प्रणय कुंज में लीन
मूक कोकिल का मादक गान,
बहा जब तन मन बंधन हीन
मधुरता से अपनी अनजानय
खिल उठी रोओं-सी तत्काल
पल्लवों की यह पुलकित डाल !
प्रथम मधु के फूलों का बाण
दुरा उर में, कर मृदु आघात,
रुधिर से फूट पड़ी रुचिमान
पल्लवों की यह सजल प्रभात,
शिराओं में उर की अज्ञात
नव्य जग जीवन कर गतिवान !
दिवस का इनमें रजत-प्रसार

उषा का स्वर्ण-सुहाग,
निशा का तुहिन-अश्रु-शृंगार,
साँझ का नि:स्वन रागय
नवोढ़ा की लज्जा सुकुमार,
तरुणतम-सुन्दरता की आग!
कल्पना के ये विह्वल बाल,
आँख के अश्रु, हृदय के हास,
वेदना के प्रदीप की ज्वाल,
प्रणय के ये मधुमास,
सुछवि के छाया वन की साँस
भर गई इनमें हाव, हुलास !
आज पल्लवित हुई है डाल,
झुकेगा कल गुंजित-मधुमास !
मुग्ध होंगे मधु से मधु-बाल,
सुरभि से अस्थिर मरुताकाश !
(नवम्बर 1924)

2. उच्छ्वास

(सावन-भादों)
(सावन)
सिसकते, अस्थिर मानस से
बाल बादल-सा उठकर आज
सरल, अस्कूट उच्छ्वास !
अपने छाया के पंखों में
(नीरव घोष भरे शंखों में)
मेरे आँसू गूँथ, फैल गंभीर मेघ-सा,
आच्छादित कर ले सारा आकाश !
यह अमूल्य मोती का साज,
इन सुवर्णमय, सरस परों में
(शुचि स्वभाव से भरे सरों में)
तुझको पहना जगत देखलेय -यह स्वर्गीय प्रकाश !

मंद, विद्युत-सा हँसकर,
वज्र-सा उर में धंसकर
गरज, गगन के गान ! गरज गंभीर स्वरों में,
भर अपना संदेश उरों में, और अधरों में,
बरस धरा में, बरस सरित, गिरि, सर, सागर में,
हर मेरा संताप, पाप जग का क्षणभर में !
हृदय के सुरभित साँस!
जरा है आदरणीयय
सुखद यौवन ! बिलास् उपवन रमणीय,
शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु, सरल, कमनीय,
-बालिका ही थी वह भी!
सरलपन ही था उसका मन
निरालापन था आभूषण,
कान से मिले अजान नयन
सहज था सजा सजीला तन !
सुरीले, ढीले अधरों बीच
अधूरा उसका लचका गान
विचक बचपन को, मन को खींच
उचित बन जाता था उपमान।
छपी-सी पी सी मृदु मुस्कान
छिपीसी, खिंची सखी-सी साथ,
उसी की उपमा सी बन, मान
गिरा का धरती थी, धर हाथ !
रंगीले, गीले फूलों-से
अधखिले भावों से प्रमुदित
बाल्य सरिता के फूलों से
खेलती थी तरंग-सी नित !
-इसी में था असीम अवसित !
मधुरिमा के मधुमास !
मेरा मधुकर का-सा जीवन
कठिन कर्म है, कोमल है मन,

विपुल मृदुल सुमनों से सुरभित,
विकसित है विस्तृत जग उपवन !
यहीं हैं मेरे तन, मन, प्राण,
यही हैं ध्यान, यही अभिमानय
धूलि की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान !
कुटिल कांटे हैं कहीं कठोर,
जटिल तरु जाल हैं किसी ओर,
सुमन दल चुन चुन कर निशि-भोर
खोजना है अजान वह छोर।
-नवल कलिका थी वह !
उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया,
नित मधुर-मधुर गीतों से
उसका उर था उकसाया।
कह उसे कल्पनाओं की
कल कल्प लता, अपनाया,
बहु नवल भावनाओं का
उसमें पराग था पाया।
मैं मंद हास सा उसके
मृदु अधरों पर मंडरायाय
और उसकी सुखद सुरभि से
प्रतिदिन समीप खिंच आया।
पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश !
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकारय
-जिसके परणों में पला ताल
दर्पण सा फैला है विशाल ! !

गिरि का गौरव गाकर झई-झई
मद से नस-नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों से सुन्दर
झरते हैं झाग भरे निर्झर !
गिरिवर के उर से उठ उठकर
उच्चाकांक्षाओं - से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर,
अनिमेष, अटक कुछ चिन्तापर !
-उड़ गया, अचानक, लो, भू-धर
फड़का अपार वारिद के पर !
रव शेष रह गए हैं निर्झर
है टूट पडा भू पर अंबर !
धंस गए धरा में सभय शाल
उठ रहा धुंआं, जल गया ताल !
-यों जलद यान में विचर, विचर,
था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल !
(वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल घर !)
इस तरह मेरे चितेरे हृदय की
बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी,
सरल शैशव की सुखद सुधि-सी वही
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी!
(भादों)
दीप के बचे विकास !
अनिल-सा लोक लोक में,
हर्ष में और शोक में,
कहाँ नहीं है स्नेह ? साँस-सा सबके उर में !
रुदन, क्रीड़न, आलिंगन,
भरण, सेवन, आराधन,
शशि की-सी ये कलित कलाएँ किलक रही हैं पुर पुर में !
यही तो है बचपन का हास
खिले यौवन का मधुप विलास,

प्रौढ़ता का वह बुद्धि विकास,
जरा का अंतर्नयन प्रकाश !
जन्मदिन का है यही हुलास,
मृत्यु का यही दीर्घ निःश्वास !
है यह वैदिक वाद,
विश्व का सुख दुखमय उन्माद !
एक्तामय है इसका नाद-
गिरा हो जाती है सनयन,
नयन करते नीरव भाषण,
श्रवण तक आ जाता है मन,
स्वयं मन करता बात श्रवण।
अणुओं में रहता है हास
हास में अश्रुकणों का भास,
श्वास में छिपा हुआ उच्छ्वास
और उच्छ्वासों ही में प्यास !
बँधे हैं जीवन तार,
सब में छिपी हुई है यह झंकार !
हो जाता संसार
नहीं तो दारुण हाहाकार !
मुरली के-से सुरसीले
हैं इसके छिद्र सुरीले,
अगणित होने पर भी तो
तारों-से हैं चमकीले।
अचल हो उठते हैं चंचल,
चपल बन जाते हैं अविचल,
पिघल पड़ते हैं पाहन दल,
कुलिश भी होजाता कोमल !
चबाता भी है तो गुण से
डोर कर में है, मन आकाश,
पटकता भी है तो गुण से,
खींचने को चकई सा पास !

मर्म पीडा के हास !
रोग का है उपचार,
पाप का भी परिहार,
है अदेह संदेह, नहीं है इसका कुछ संस्कार !
हृदय की है यह दुर्बल हार !!
खींच लो इसको, कहीं क्या छोर है ?
द्रौपदी का यह दुरंत दुकूल है !
फैलता है हृदय में नभ बेलि-सा,
खोज लो, इसका कहीं क्या मूल है ?
यही तो कांटे सा चुपचाप
उगा उस तरुवर में, सुकुमार
सुमन वह था जिसमें अविकार-
वेध डाला मधुकर निष्पाप ! !
बड़ों में दुर्बलता है शाप !
नहीं चल सकते गिरिवर राह,
न रुक सकता है सौरभवाह !
तरल हो उठता उदधि अथाह,
सूर का दुख देता है दाह !
देख हाय ! यह, उर से रह रह निकल रही है आह,
व्यथा का रुकता नहीं प्रवाह !
सिड़ी के गूढ़ हुलास !
बीनते हैं प्रसून दल,
तोड़ते ही हैं मृदु फल,
देखा नहीं किसी को चुनते कोमल कोंपल ! !
अभी पल्लवित हुआ था स्नेह,
लाज का भी न गया था राग,
पड़ा पाला-सा हा ! संदेह,
कर दिया वह नव राग विराग।
हो गया था पतझड़, मधुकाल,
पत्र तो आते हाय, नवल।
झड़ गये स्नेह वृंत से फूल,

लगा यह असमय कैसा फल !
मिले थे दो मानस अज्ञात,
स्नेह शशि विजित था भरपूर,
अनिल सा कर अकरुण आघात,
प्रेम प्रतिमा करदी वह चूर !!
घूमता है सम्मुख वह रूप
सुदर्शन हुए सुदर्शन चक्र !
ढाल-सा रखवाला शशि आज
हो गया है हा ! असि सा वक्र !!
बालकों का-सा मारा हाथ,
कर दिए विकल हृदय के तार !
नहीं अब रुकती है झंकार,
यहीं था हा ! क्या एक सितार ?
हुई मरु की मरीचिका आज,
मुझे गंगा की पावन धार !
कहाँ है उत्कंठा का पार ! !
इसी वेदना में विलीन हो अब मेरा संसार !
तुम्हें, जो चाहो, है अधिकार !
टूट जा यहीं यह हृदय हार ! ! !
xxx
कौन जान सका किसी के हृदय को ?
सच नहीं होता सदा अनुमान है !
कौन भेद सका अगम आकाश को ?
कौन समझ सका उदधि का गान है ?
है सभी तो ओर दुर्बलता यही,
समभता कोई नहीं-क्या सार है !
निरपराधों के लिए भी तो अहा !
हो गया संसार कारागार है ! !
(सितम्बर, 1921)

3. आँसू

(भादों की भरन) (1)
अपलक आँखों में
उमड़ उर के सुरभित उच्छ्वास !
सजल जलधर से बन जलधार,
प्रेममय वे प्रिय पावस मास
पुनः नयनों में कर साकार,
मूक कणों की कातर वाणी भर इनमें अविकार,
दिव्य स्वर पा आंसू का तार
बहा दे हृदयोद्गार !
आह, यह मेरा गीला गान!
वर्ण-वर्ण है उर की कंपन,
शब्द-शब्द है सुधि की दंशन,
चरण-चरण है आह,
कथा है कण-कण करुण अथाह,
बूंद में है बाड़व का दाह !
प्रथम भी ये नयनों के बाल
खिलाये हैं नादान,
आज मणियों ही की तो माल
हृदय में बिखर गई अनजान !
टूटते हैं असंख्य उड़गण,
रिक्त हो गया चाँद का थाल !
गल गया मन मिश्री का कन,
नई सीखी पलकों ने बान।
विरह है अथवा यह वरदान !
कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता, सिसकता गान है,
शून्य आहों में सुरीले छंद हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है !
वियोगी होगा पहिला कवि,
आह से उपजा होगा गान,

उमड़ कर आँखों से चुपचाप
वही होगी कविता अनजान !
हाय, किसके उर में
उतारूँ अपने उर का भार !
किसे अब दूँ उपहार
गूँथ यह अश्रुकणों का हार ! !
मेरा पावस ऋतु सा जीवन,
मानस-सा उमड़ा अपार मनय
गहरे, धुँधले, धुले, सांवले,
मेघों-से मेरे भरे नयन!
कभी उर में अगणित मृदु भाव
कूजते हैं विहगों-से हाय !
अरुण कलियों- से कोमल घाव
कभी खुल पड़ते हैं असहाय !
इंद्रधनु-सा आशा का सेतु
अनिल में अटका कभी अछोर,
कभी कुहरे-सी धूमिल घोर,
दीखती भावी चारों ओर !
तड़ित्-सा सुमुखि ! तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार, उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर जब गंभीर
मुझे करता है अधिक अधीर,
जुगनुओं-से उड़ मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हें निदान !
धधकती है जलदों से ज्वाल,
बन गया नीलम व्योम प्रवाल,
आज सोने का संध्याकाल
जल रहा जतुगृह-सा विकराल,
पटक रवि को बलि सा पाताल
एक ही वामन पग में-
लपकता है तमिस्र तत्काल,

–धुएँ का विश्व विशाल !
चिनगियों–से तारों को डाल
आग का सा अँगार शशि लाल
लहकता है, फैला मणि ज्वाल
जगत को डसता है तम व्याल !
पूर्व सुधि सहसा जब सुकुमारि !
सरल शुक सी सुखकर सुर में
तुम्हारी भोली बातें
कभी दुहराती है उर में,
अगन–से मेरे पुलकित प्राण
सहस्रों सरस स्वरों में कूक,
तुम्हारा करते हैं आह्वान,
गिरा रहती है श्रुति–सी मूक !
देखता हूँ, जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये! मर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को,
नवोढ़ा बाल लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिंग रुक कर
सरकती है सत्वर,
अकेली आकुलता–सी प्राण !
कहीं तब करती मृदु आघात,
सिहर उठता कृश गात,
ठहर जाते है पग अज्ञात !
देखता हूँ, जब पतला
इंद्रधनुषी हल्का
रेशमी घूँघट बादल का
खोलती है कुमुद कलाय
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता तब अंतर्धानय

न जाने तुमसे मेरे प्राण
चाहते क्या आदान !

x x x

बादलों के छायामय मेल
घूमते हैं आँखों में, फैल !
अवनि और अंबर के वे खेल
शैल में जलद, जलद में शैल।
शिखर पर विचर मरुत रखवाल
वेणु में भरता था जब स्वर,
मेमनों - से मेघों के बाल
कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर !
द्विरद दंतों - से उठ सुंदर
सुखद कर सीकर - से बढ़ कर,
भूति - से शोभित बिखर बिखर,
फैल फिर कटि के-से परिकर,
बदल यों विविध देश जलधर
बनाते थे गिरि को गजवर !
इंद्रधनु की सुनकर टंकार
उचक चपला के चंचल बाल,
दौड़ते थे गिरि के उस पार
देख उड़ते-विशिखों की धार,
मरुत जब उनको द्रुत इंकार,
रोक देता था मेघासार।
अचल के जब वे विमल विचार
अवनि से उठ-उठ कर ऊपर,
विपुल व्यापकता में अविकार
लीन हो जाते थे सत्वर,
विहंगम-सा बैठा गिरि पर
सुहाता था विशाल अंबर !
पपीहों की वह पीन पुकार,
निर्झरों की भारी झर झर,

झींगुरों की भीनी झनकार
घनों की गुरु गंभीर गहरय
बिन्दुओं की छनती छनकार,
दादुरों के वे दुहरे स्वर,
हृदय हरते थे विविध प्रकार
शैल-पावस के प्रश्नोत्तर !
खैंच ऐंचीला भ्रू सुरचाप-
शैल की सुधि यों बारंबार--
हिला हरियाली का सुदुकूल,
झूला झरनों का झलमल-हार,
जलद पट से दिखला मुख चंद्र,
पलक पल-पल चपला के मार,
भग्न उर पर भूधर-सा हाय !
सुमुखि ! धर देती है साकार !
(2)
करुण है हाय ! प्रणय,
नहीं दुरता है जहाँ दुराव,
करुणतर है वह भय
चाहता है, जो सदा बचाव,
करुणतम भग्न हृदय,
नहीं भरता है जिसका घाव,
करुण अतिशय उनका संशय
छुड़ाते हैं, जो जुड़े स्वभाव !!
किए भी हुआ कहाँ संयोग ?
टला टाले कब इसका वास ?
स्वयं ही तो आया यह पास,
गया भी, बिना प्रयास !
कभी तो अब तक पावन प्रेम
नहीं कहलाया पापाचार,
हुई मुझको ही मदिरा आज
हाय क्या गंगाजल की धार ! !

हृदय। रो, अपने दुख का भार !
हृदय ! रो, उनको है अधिकार !
हृदय ! रो यह जड़ स्वेच्छाचार,
शिशिर का-सा समीर संचार !
प्रथम, इच्छा का पारावार,
सुखद आशा का स्वर्गाभास,
स्नेह का वासंती संसार,
पुनः उच्छ्वासों का आकाश !
-यही तो है जीवन का गान,
सुख का आदि और अवसान !
सिसकते हैं समुद्र-से मन,
उमड़ते हैं नभ-से लोचन,
विश्व वाणी ही है क्रंदन,
विश्व का काव्य अश्रु कन।
गगन के भी उर में हैं घाव,
देखतीं ताराएँ भी राह,
बंधा विद्युत् छबि में जलवाह
चंद्र की चित्तवन में भी चाह,
दिखाते जड़ भी तो अपनाव
अनिल भी भरती ठंडी आह !
हाय ! मेरा जीवन,
प्रेम और आँसू के कन !
आह मेरा अक्षय धन,
अपरिमित सुंदरता और मन !
-एक वीणा की मृदु झंकार !
कहाँ है सुंदरता का पार !
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि !
दिखाऊँ मैं साकार ?
तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान,
तुम्हारी वाणी में कल्याणि।

त्रिवेणी की लहरों का गान !
अपरिचित चित्तवन में था प्रात,
सुधामय सांसों में उपचार !
तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आभार !
करुण भोहों में था आकाश,
हास में शैशव का संसार,
तुम्हारी आंखों में कर वास
प्रेम ने पाया था आकार !
कपोलों में उर के मृदु भाव
श्रवण नयनों में प्रिय बर्ताव,
सरल संकेतों में संकोच,
मृदुल अधरों में मधुर दुराव !
उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों के साँस !
बिन्दु में थी तुम सिन्धु अनंत
एक सुर में समस्त संगीत,
एक कलिका में अखिल वसंत,
धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत !
विधुर उर के मृदु भावों से
तुम्हारा कर नित नव श्रृंगार,
पूजता हूँ मैं तुम्हें कुमारि।
मूँद दुहरे दृग द्वार !
अचल पलकों में मूर्ति सँवार
पान करता हूँ रूप अपार,
पिघल पड़ते हैं प्राण,
उबल चलती है—गजल धार।
बालकों सा ही तो मैं हाय !
याद कर रोता हूँ अजान,

न जाने, होकर भी असहाय,
पुनः किससे करता हूँ मान।
xxx
सुप्ति हो स्वल्प वियोग
नव मिलन को अनिमेष,
दैव ! जीवन भर का विश्लेष
मृत्यु ही है निःशेष !!
xxx
मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को
थाम ले अब, हृदय ! इस आह्वान को !
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य, पावन स्थान को।
तेरे उज्ज्वल आँसू सुमनों में सदा
वास करेंगे, भग्न हृदय, उनकी व्यथा
अनिल पोंछेगी, करुण उनकी कथा
मधुप बालिकाएँ गाएंगी सर्वदा।
(दिसम्बर 1921)

4. विनय

मा! मेरे जीवन की हार
तेरा मंजुल हृदय-हार हो,
अश्रु-कणों का यह उपहार,
मेरे सफल-श्रमों का सार
तेरे मस्तक का हो उज्ज्वल
श्रम-जलमय मुक्तालंकार।
मेरे भूरि-दुखों का भार
तेरी उर-इच्छा का फल हो,
तेरी आशा का शृंगार,
मेरे रति, कृति, व्रत, आचार
मा! तेरी निर्भयता हों नित
तेरे पूजन के उपचार-

यही विनय है बारम्बार।
(जनवरी 1918)

5. वीचि-विलास

अरी सलिल की लोल हिलोर !
यह कैसा स्वर्गीय हुलास ?
सरिता की चंचल दृग कोर !
यह जग को अविदित उल्लास।
आ, मेरे मृदु अंग झकोर,
नयनों को निज छबि में बोर,
मेरे उर में भर यह रोर !
गूढ़ सांस-सी यति गतिहीन
अपनी ही कंपन में लीन,
सजल कल्पना-सी साकार
पुनः-पुनः प्रिय, पुनः नवीन,
तुम शैशव स्मिति सी सुकुमार,
मर्म रहित, पर मधुर अपार,
खिल पड़ती हो विना विचार !
वारि बेलि सी फैल अमूल,
छा अपत्र सरिता के कूल,
विकसा और सकुचा नवजात
बिना नाल के फेनिल फूलय
छुईमुई-सी तुम पश्चात्
छूकर अपना ही मृदु गात,
मुरझा जाती हो अज्ञात !
स्वर्ण स्वप्न-सी कर अभिसार
जल के पलकों में सुकुमार,
फूट आप ही आप अजान
मधुर वेणु की सी झंकारय
तुम इच्छाओं सी असमान,
छोड़ चिह्न उर में गतिवान,

हो जाती हो अंतर्धान !
मुग्धा कीसी मृदु मुस्कान
खिलते ही लज्जा 'से म्लान,
स्वर्गिक सुत की सी आभास-
अतिशयता में अचिर, महान-
दिव्य भूति-सी आ तुम पास,
कर जाती हो क्षणिक विलास,
आकुल उर को दे आश्वास !
ताल ताल में थिरक अमन्द,
सौ-सौ छंदों में स्वच्छन्द
गाती हो निस्तल के गान,
सिन्ध गिरा-सी अगम, अनन्त,
इंदु करों से लिख अम्लान
तारों के रोचक आख्यान,
अंबर के रहस्य द्युतिमान !
चला मीन दृग चारों ओर,
यह गह चंचल अंचल छोर,
रुचिर रूपहरे पंख पसार
अरी वारि की परी किशोर !
तुम जल थल में अनिलाकार,
अपनी ही लघिमा पर वार,
करती हो बहुरूप विहार !
अंग भंग में व्योम मरोर,
भौंहों में तारों के झोंर
नचा, नाचती हो भरपूर
तुम किरणों की बना हिंडोर,
निज अधरों पर कोमल क्रूर,
शशि से दीप्ति प्रणय कपूर
चाँदी का चुम्बन कर चूर !
खेल मिचौनी सी निशि भोर,
कुटिल काल का भी चित्तचोर,

जन्म-मरण से कर परिहास,
बढ़ असीम की ओर अछोर,
तुम फिर फिर सुधि ही सोच्छ्वास
जी उठती हो बिना प्रयास,
ज्वाला-सी, पाकर वातास !
ओ अकूल की उज्ज्वल हास।
अरी अतल की पुलकित श्वास !
महानन्द की मधुर उमंग !
चिर शाश्वत की अस्थिर लास !
मेरे मन की विविध तरंग
रंगिणि। सब तेरे ही संग
एक रूप में मिलें अनंग !
(मई, 1923)

6. मधुकरी

सिखा दो ना, हे मधुप कुमारि !
मुझे भी अपने मीठे गान,
कुसुम के चुने कटोरों से,
करा दो ना, कुछ कुछ मधुपान !
नवल कलियों के धोरे झूम,
प्रसूनों के अधरों को चूम,
मुदित, कवि-सी तुम अपना पाठ
सीखती हो सखि! जग में घूम,
सुना दो ना, तब हे सुकुमारि !
मुझे भी ये केसर के गान!
किसी के उर में तुम अनजान
कभी बँध जाती, बन चित्तचोर,
अधखिले, खिले, सुकोमल गान
गूँथती हो फिर उड़-उड़ भोर,
मुझे भी बतला दो न कुमारि!
मधुर निशि स्वजनों वे ये गान !

सूँघ चुन कर, सखि ! सारे फूल,
सहज बिंध बँध, निज सुख-दुख भूल,
सरस रचती हो ऐसा राग
धूल बन जाती है मधुमूल,
पिला दो ना, तब हे सुकुमारि !
इसी से थोड़े मधुमय गान,
कुसुम के खुले कटोरों से
करा दो ना, कुछ-कुछ मधुपान !
(सितम्बर 1922)

7. मोह

छोड़ द्रुमों की मृदु-छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?
भूल अभी से इस जग को!
तज कर तरल-तरंगों को,
इन्द्र-धनुष के रंगों को,
तेरे भ्रू-भंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन?
भूल अभी से इस जग को!
कोयल का वह कोमल-बोल,
मधुकर की वीणा अनमोल,
कह, तब तेरे ही प्रिय-स्वर से कैसे भर लूँ सजनि! श्रवन?
भूल अभी से इस जग को!
उषा-सस्मित किसलय-दल,
सुधा रश्मि से उतरा जल,
ना, अधरामृत ही के मद में कैसे बहला दूँ जीवन?
भूल अभी से इस जग को!
(जनवरी 1918)

8. मौन-निमन्त्रण

स्तब्ध ज्योत्सना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,

विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,
न जाने नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन !
सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर नि:श्वास,
प्रखर झरती जब पावस-धार,
न जाने,तपक तड़ित में कौन
मुझे इंगित करता तब मौन !
देख वसुधा का यौवन भार
गूंज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के-से मृदु उद्‌गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्‌वास,
न जाने, सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन !
क्षुब्ध जल शिखरों को जब बात
सिंधु में मथकर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना,बिथुरा देती अज्ञात,
उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता कौन !
स्वर्ण,सुख,श्री सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर
विहग कुल की कल-कंठ हिलोर
मिला देती भू-नभ के छोर,
न जाने, अलस पलक-दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन !
तुमुल तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु झींगुर-कुल की झंकार

कँपा देती निद्रा के तार
न जाने, खद्योतों से कौन
मुझे पथ दिखलाता तब मौन !
कनक छाया में जबकि सकल
खोलती कलिका उर के द्वार
सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुंजारय
न जाने, ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन !
बिछा कार्यों का गुरुतर भार
दिवस को दे सुवर्ण अवसान,
शून्य शय्या में श्रमित अपार,
जुड़ाता जब मैं आकुल प्राण,
न जाने, मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया-जग में मौन !
न जाने कौन अये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हों तुम पथ अजान
फूँक देते छिद्रों में गान,
अहे सुख-दुःख के सहचर मौन !
नहीं कह सकता तुम हो कौन !

9. वसन्त-श्री

उस फैली हरियाली में,
कौन अकेली खेल रही मा!
वह अपनी वय-बाली में?
सजा हृदय की थाली में--
क्रीड़ा, कौतूहल, कोमलता,
मोद, मधुरिमा, हास, विलास,
लीला, विस्मय, अस्फुटता, भय,
स्नेह, पुलक, सुख, सरल-हुलास!

उषा की मृदु-लाली में--
किसका पूजन करती पल-पल
बाल-चपलता से अपनी?
मृदु-कोमलता से वह अपनी,
सहज-सरलता से अपनी?
मधुऋतु की तरु-डाली में--
रूप, रंग, रज, सुरभि, मधुर-मधु,
भर कर मुकुलित अंगों में
मा! क्या तुम्हें रिझाती है वह?
खिल-खिल बाल-उमंगों में,
हिल-मिल हृदय-तरंगों में!
(मार्च 1918)

10. विश्व-वेणु

हाँ, -हम मारुत के मृदुल झकोर,
नील व्योम के अंचल छोर,
बाल कल्पना-से अनजान
फिरते रहते हैं निशि भोर,
उर-उर के प्रिय, जग के प्राण !
हरियाली से ढंक मृदु गात,
कानों में भर सौ-सौ बात,
हमें झुलाते हैं अविराम
विश्व पुलक-से तरु के पात,
कुसुमित पलनों में अभिराम !
चारु नभचरों-से वय हीन,
अपनी ही मृदु छवि में लीन,
कर सहसा शीतल पात,
चंचलपन ही में आसीन,
हम पुलकित कर देते गात !
गुंजित कुंजों में सुकुमार,
(भौरों के सुरभित अभिसार)

आ, जा, खोल, फेर, स्वच्छंद
पत्रों के बहु छिद्रित द्वार,
हम क्रीड़ा करते सानंद !
चूम मौन कलियों का मान,
खिला मलिन मुख में मुस्कान,
गूढ़ स्नेह का-सा निःश्वास
पा कुसुमों से सौरभ दान,
छा जाते हम अवनि अकास !
चंचल कर सरसी के प्राण,
सौ-सौ स्वप्नों सी छबिमान,
लहरों में खिल सानुप्रास,
गा वारिधि छंदों में गान,
करते हम ज्योत्सना का लास !
प्रैट्स वेणु वन में आलाप,
जगा रेणु के लोड़ित सांप,
भय से पीले तरु के पात
भगा बावलों-से वे - आप,
करते नित नाना उत्पात !
अस्थि हीन जलदों के बाल,
खींच मींच और फेंक, उछाल,
रचते विविध मनोहर रूप
मार जिला उनको तत्काल,
फैला माया जाल अनूप !
निज अविरल गति में उड्डीन,
उच्छृंखलता में स्वाधीन,
वातायन से आ द्रुत भोर
लेते मृदु पलकों को छीन
हम सुखमय स्वप्नों के चोर !
चुन कलियों की कोमल सांस
किसलय अधरों का हिम हास,
चिर अतीत स्मृति-सी अनजान

ला सुमनों की मृदुल सुवास
पिघला देते तन, मन, प्राण।
हर सुदूर से अस्फुट तान,
आकुल कर पथिकों के कान,
विश्व वेणु के - से झंकार
हम जग के सुख - दुखमय गान
पहुँचाते अनंत के द्वार !
हम नभ की निस्सीम हिलोर
डुबा दिशाओं के दस छोर
नव जीवन कंपन संचार
करते जग में चारों ओर,
अमर, अगोचर, और अविकार !
(मार्च, 1923)

11. शिशु

कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम ?
अये अभिनव, अभिराम,
मृदुता ही है बस आकार,
मथुरिमा-छबि शृंगार,
न अंगों में है रंग उभार,
न मृदु उर में उद्‌गार,
निरे साँसों के पिंजर-द्वार !
कौन हो तुम अकलंक, अकाम ?
कामना-से माँ की सुकुमार
स्नेह में चिर-साकार,
मृदुल कुड्‌मल-से जिसे न ज्ञात
सुरभि का निज संसार,
स्रोत-से नव, अवदात,
स्खलित अविदित-पथ पर अविचार,
कौन तुम गूढ़, गहन, अज्ञात ?
अहे निरुपम, नवजात !

वेणु-से जिसकी मधुमय तान
दुरी हो अंतर में अनजान,
विरल उडु-से सरसी में तात !
इतर हो जिसका वासस्थान,
लहर-से लघु, नादान,
कम्प अम्बुधि की एक महान,
विमल हिम-जल-से एक प्रभात
कहाँ से उतरे तुम छबिमान !
गीति-से जीवन में लयमान,
भाव जिसके अस्पष्ट, अजान,
सुरभि-से जिसे विहान
उड़ा लाया हो प्राण,
स्वप्न-से निद्रित-सजग समान,
सुप्ति से जिसे न अपना ज्ञान,
रश्मि-से शुचि-रुचिमान
वीचि में पड़ी वितान,
स्वीय-स्मिति-से ही हे अज्ञान,
दिव्यता का निज तुम्हें न ध्यान !
खेलती अधरों पर मुस्कान,
पूर्व-सुधि-सी अम्लान,
सरल उर की-सी मृदु आलाप,
अनवगत जिसका गान,
कौन-सी अमर-गिरा यह, प्राण!
कौन-से राग, छन्द, आख्यान?
स्वप्न-लोकों में किन चुपचाप
विचरते तुम ईच्छा-गतिवान !
न अपना ही, न जगत का ज्ञान,
न परिचित हैं निज नयन, न कान,
दीखता है जग कैसा तात !
नाम, गुण रूप अजान ?
तुम्हीं-सा हूँ मैं भी अज्ञात,

वत्स ! जग है अज्ञेय महान !
(नवम्बर 1923)

12. विसर्जन

अनुपम ! इस सुंदर छवि से
मैं आज सजा लूँ निज मन,
अपलक अपार चित्तवन पर
अर्पण कर दूं निज यौवन !
इस मंद हास में बह कर
गा लूँ मैं बेसुर-'प्रियतम',
बस इस पागलपन में ही
अवसित कर हूँ निज जीवन।
नव कुसुमों में छिप-छिप कर
जब तुम मधु पान करोगे,
फूली न समाऊँगी मैं
उस सुख से है जीवन धन !
यदि निज उर के कांटों को
तुम मुझे न पहनाओगे,
उस विरह वेदना से मैं
नित तड़पूँगी कोमल तन !
अवलोक अल्पता मेरी
उपहार न चाहे दो तुम,
पर कुपित न होना मुझ पर
दो चाहे हार दया धन !
तुम मुझे भूना दो मन से
मैं इसे भूल जाऊंगी,
पर वंचित मुझे न रखना
अपनी सेवा से पावन !
xxx
मैं सखियों से कह आऊँ-
प्रस्तुत है पद की दासी,

वे चाहें मुझ पर हँस लें
मैं खड़ी रहूँगी सनयन।
(जून 1919)

13. नारी-रूप

घने लहरे रेशम के बाल--
धरा है सिर में मैंने, देवि !
तुम्हारा यह स्वर्गिक श्रृंगार,
स्वर्ण का सुरभित भार।
मलिन्दों से उलझी गुंजार,
मृणालों से मृदु तार,
मेघ से संध्या का संसार
वारि से ऊर्मि उभार,
-मिले हैं इन्हें विविध उपहार,
तरुण तम से विस्तार:
स्नेहमयि ! सुंदरतामयि !
तुम्हारे रोम रोम से, नारि !
मुझे है स्नेह अपार,
तुम्हारा मृदु उर ही, सुकुमारि !
मूझे है स्वर्गागार !
तुम्हारे गुण हैं मेरे गान,
मृदुल दुर्बलता, ध्यान,
तुम्हारी पावनता, अभिमान,
शक्ति, पूजन सम्मान,
अकेली सुन्दरता कल्याणी !
सकल ऐश्वर्यों की संधान !
स्वप्नमयि। हे मायामयि !
तुम्हीं हो स्पृहा, अश्रु और हास,
सृष्टि के उर की सांस,
तुम्हीं इच्छाओं की अवसान,
तुम्हीं स्वर्गिक आभास,

तुम्हारी सेवा में अनजान
हृदय है मेरा अंतर्धान ?
देवि ! मा ! सहचरि ! प्राण !
(मई, 1922)

14. निर्झरी

यह कैसा जीवन का गान
अलि, कीमत कल मल टल मल?
अरी शैल बाले नादान,
यह अविरल कलकल छल-छल?
झर मर कर पत्रों के पास,
रण मण रोड़ों पर सायास,
हँस-हँस सिकता से परिहास
करती हो अलि, तुम झलमल !
स्वर्ण बेली-सी खिली विहान,
निशि में तारों की-सी यान,
रजत तार - सी शुचि रुचिमान
फिरती हो रंगिणि, रल मल !
दिखा भंगिमय भृकुटि विलास
उपलों पर बहु रंगी लास,
फैलाती हो फेनिल हास,
फूलों के कूलों पर चल।
अलि, यह क्या केवल दिखलाव,
भूल व्यथा का मुखर भुलाव ?
अथवा जीवन का बहलाव ?
सजल आँसुओं की अंचल !

15. जीवन-यान

अहे विश्व! हे विश्व-व्यथित-मन!
किधर बह रहा है यह जीवन?
यह लघु-पोत, पात, तृण, रज-कण,

अस्थिर-भीरु-वितान,
किधर?--किस ओर?--अछोर,--अजान,
डोलता है यह दुर्बल-यान?
मूक-बुद्बुदों-से लहरों में
मेरे व्याकुल-गान
फूट पड़ते निःश्वास-समान,
किसे है हा! पर उनका ध्यान!
कहाँ दुरे हो मेरे ध्रुव!
हे पथ-दर्शक! द्युतिमान!
दृगों से बरसा यह अपिधान
देव! कब दोगे दर्शन-दान?
(अगस्त 1923)

16. बादल

सुरपति के हम हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर,
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के चिर जीवनधर,
मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर,
सुभग स्वाति के मुक्ताकर,
विहग वर्ग के गर्भ विधायक,
कृषक बालिका के जलधर !
जलाशयों में कमल दलों-सा
हमें खिलाता नित दिनकर,
पर बालक-सा वायु सकल दल
बिखरा देता चुन सत्वर,
लधु लहरों के चल पलनों में
हमें झुलाता जब सागर,
वहीं चील-सा झपट, बाँह गह,
हमको ले जाता ऊपर।
भूमि गर्भ में छिप विहंग-से,

फैला कोमल, रोमिल पंख,
हम असंख्य अस्फुट बीजों में,
सेते साँस, छुड़ा जड़ पंक !
विपुल कल्पना से त्रिभुवन की
विविध रूप धर भर नभ अंक,
हम फिर क्रीड़ा कौतुक करते,
छा अनंत उर में निःशंक !
कभी चौकड़ी भरते मृग-से
भू पर चरण नहीं धरते,
मत्त मतगंज कभी झूमते,
सजग शशक नभ को चरते,
कभी कीश-से अनिल डाल में
नीरवता से मुँह भरते,
बृहत् गृद्ध-से विहग छदों को,
बिखरते नभ,में तरते !
कभी अचानक भूतों का-सा
प्रकटा विकट महा आकार
कड़क,कड़क जब हंसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार,
फिर परियों के बच्चों से हम
सुभग सीप के पंख पसार,
समुद तैरते शुचि ज्योत्स्ना में,
पकड़ इंदु के कर सुकुमार !
अनिल विलोड़ित गगन सिंधु में
प्रलय बाढ़ से चारों ओर
उमड़-उमड़ हम लहराते हैं
बरसा उपल, तिमिर घनघोर,
बात-बात में, तूल तोम-सा
व्योम विटप से झटक,झकोर
हमें उड़ा ले जाता जब द्रुत
दल बल युत घुस वातुल चोर !

बुदबुद द्युति तारक दल तरलित
तम के यमुना जल में श्याम
हम विशाल जंबाल जाल-से
बहते हैं अमूल, अविराम,
दमयंती-सी कुमुद कला के
रजत करों में फिर अभिराम
स्वर्ण हंस-से हम मृदु ध्वनि कर,
कहते प्रिय संदेश ललाम !
दुहरा विद्युतदाम चढ़ा द्रुत,
इंद्रधनुष की कर टंकार,
विकट पटह-से निर्घोषित हो,
बरसा विशिखों-सा आसार,
चूर्ण-चूर्ण कर वज्रायुध से
भूधर को अति भीमाकार
मदोन्मत्त वासव सेना-से
करते हम नित वायु विहार !
स्वर्ण भृंग तारावलि वेष्टित,
गुंजित, पुंजित, तरल, रसाल,
मधुगृह-से हम गगन पटल में,
लटके रहते विपुल विशाल !
जालिक-सा आ अनिल, हमारा
नील सलिल में फैला जाल,
उन्हें फंसा लेता फिर सहसा
मीनों के-से चंचल बाल !
संध्या का मादक पराग पी,
झूम मलिन्दों-से अभिराम,
नभ के नील कमल में निर्भय
करते हम विमुग्ध विश्राम,
फिर बाड़व-से सांध्य सिन्धु में
सुलग, सोख उसको अविराम,
बिखरा देते तारावलि-से

नभ में उसके रत्न निकाम !
धीरे-धीरे संशय-से उठ,
बढ़ अपयश-से शीघ्र अछोर,
नभ के उर में उमड़ मोह-से
फैल लालसा-से निशि भोर,
इंद्रचाप-सी व्योम भृकुटि पर
लटक मौन चिंता-से घोर
घोष भरे विप्लव भय-से हम
छा जाते द्रुत चारों ओर !
व्योम विपिन में वसंत-सा
खिलता नव पल्लवित प्रभात,
बरते हम तब अनिल स्रोत में
गिर तमाल तम के से पात,
उदयाचल से बाल हंस फिर
उड़ता अंबर में अवदात
फैल स्वर्ण पंखों से हम भी,
करते द्रुत मारुत से बात !
पर्वत से लघु धूलि-धूलि से
पर्वत बन,पल में साकार-
काल चक्र से चढ़ते गिरते,
पल में जलधर,फिर जलधार,
कभी हवा में महल बनाकर,
सेतु बाँधकर कभी अपार,
हम विलीन हों जाते सहसा
विभव भूति ही से निस्सार !
हम सागर के धवल हास हैं
जल के धूम,गगन की धूल,
अनिल फेन उषा के पल्लव,
वारि वसन,वसुधा के मूल,
नभ में अवनि,अवनि में अंबर,
सलिल भस्म,मारुत के फूल,

हम हीं जल में थल,थल में जल,
दिन के तम,पावक के तूल !
व्योम बेलि,ताराओं में गति,
चलते अचल, गगन के गान,
हम अपलक तारों की तंद्रा,
ज्योत्सना के हिम,शशि के यान,
पवन धेनु,रवि के पांशुल श्रम,
सलिल अनल के विरल वितान !
व्योम पलक,जल खग,बहते थल,
अंबुधि की कल्पना महान !
धूम-धुआँरे,काजल कारे,
हम हीं बिकरारे बादल,
मदन राज के बीर बहादुर,
पावस के उड़ते फणिधर !
चमक झमकमय मंत्र वशीकर
छहर घहरमय विष सीकर,
स्वर्ग सेतु-से इंद्रधनुषधर,
कामरूप घनश्याम अमर !

17. स्मृति

(उच्छ्वास की बालिका के प्रति)
आँख में 'आँसू' भर अनजान,
अधर पर धर 'उच्छ्वास',
समाती है जब उर में प्राण।
तुम्हारी सुधि की सुरभित सांस,
डुबा देता है मुझे सदेह
सूर सागर वह स्नेह !
रूप का राशि-राशि यह रास,
दृगों की यमुना श्यामय
तुम्हारे स्वर का वेणु विलास,
हृदय का वृंदा धाम,

देवि, मथुरा था वह आमोद,
दैव ! व्रज, अह, यह विरह विषाद।
आह, वे दिन ! -द्वापर की बात !
भूति-! भारत को ज्ञात !
(नवम्बर, 1922)

18. आकांक्षा

तुहिन बिन्दु बनकर सुंदर
नभ से भू पर समुद उतर,
मा, जब तू सस्मित सुमनों को
आभूषित करती नित प्रात,
ऋतुपति के लीलास्थल में,
मैं न चाहती तब वे कण
हों मेरे मुक्ताभूषण,
पर, मेरे ही स्नेह-करों से
सुमन सुसज्जित हों वे मात,
फूले तेरे अंचल में !
जलद यान में फिर लघुभार,
जब तू जग को मुक्ताहार
देती है उपहार रूप मा,
सुन चातक की आर्त पुकार,
जगती का करने उपकार,
मैं न चाहती तब वह हार
करे, जननि, मेरा शृंगार,
पर मैं ही चातकिनी बनकर
तुझे पुकारूँ बारंबार,
हरने जग का ताप अपार !
(अक्टूबर, 1922)

19. विश्व-व्याप्ति

स्पृहा के विश्व, हृदय के हास !
कल्पना के सुख, स्नेह विकास !

फूल, तुम कहाँ रहे अब फूल ?
अनिल में ? बनकर ऊर्मिल गान,
स्वर्ण किरणों में कर मुस्कान,
झूलते हो झोंकों की झूल,
फूल। तुम कहाँ रहे अब फूल ?
अवनि में ? बन अशोक का फूल,
विलम अलि ध्वनि में, लिपटा धूल,
गए क्या मेरी गोदी भूल ?
फूल, तुम कहाँ रहे अब फूल ?
सलिल में ? उछल-उछल, हिल-हिल,
लहरियों में सलील खिल-खिल,
थिरकते, गह-गह अनिल दुकूल?
फूल, तुम कहाँ रहे अब फूल ?
अनल में ? ज्वाला बन पावन,
दग्ध कर मोह मलिन बंधन,
जला सुधि मेरी चुके समूल?
फूल, तुम कहाँ रहे अब फूल?
गगन में ? बन शशि कला शकल,
देख नलिनी-सी मुझे विकल,
बहाते ओस अश्रु या स्थूल ?
फूल, तुम कहाँ रहे अब फूल?
स्वप्न थे तुम, मैं थी निद्रित,
सुकृत थे तुम, मैं हूँ कलुषित,
पा चुके तुम भव सागर कूल,
फूल, तुम कहाँ रहे अब फूल ?
(जुलाई, 1919)

20. याचना

बना मधुर मेरा जीवन!
नव नव सुमनों से चुन चुन कर
धूलि, सुरभि, मधुरस, हिम-कण,

मेरे उर की मृदु-कलिका में
भरदे, करदे विकसित मन।
बना मधुर मेरा भाषण!
बंशी-से ही कर दे मेरे
सरल प्राण और सरस वचन,
जैसा जैसा मुझको छेड़ें
बोलूँ अधिक मधुर, मोहन,
जो अकर्ण-अहि को भी सहसा
करदे मन्त्र-मुग्ध, नत-फन,
रोम रोम के छिद्रों से मा !
फूटे तेरा राग गहन,
बना मधुर मेरा तन, मन !
(जनवरी 1919)

21. स्याही का बूँद

गीत लिखती थी मैं उनके,-
अचानक, यह स्याही का बूँद
लेखनी से गिरकर, सुकुमार
गोल तारा-सा नभ से कूद,
सोधने को क्या स्वर का तार
सजनि, आया है मेरे पास ?
अर्द्ध निद्रित-सा, विस्मृत-सा,
न जागृत-सा, न विमूर्छित-सा,
अर्द्ध जीवित-सा और मृत-सा,
न हर्षित-सा, न विस्मित-सा,
गिरा का है क्या यह परिहास ?
एकटक, पागल-सा यह आजय
अपरिचित-सा, वाचक-सा कौन
यहाँ आया छिप-छिप निव्यजि,
मुग्ध-सा, चिन्तित-सा, जड़ मौन,
सजनि, यह कौतुक है या रास !

योग का-सा यह नीरव तार,
ब्रह्म माया का-सा संसार,
सिन्धु-सा घट में, -यह उपहार
कल्पना ने क्या दिया अपार,
कली में छिपा वसंत विकास !
(मई, 1920)

22. परिवर्तन

(1)
कहां आज वह पूर्ण-पुरातन, वह सुवर्ण का काल?
भूतियों का दिगंत-छबि-जाल,
ज्योति-चुम्बित जगती का भाल?
राशि-राशि विकसित वसुधा का वह यौवन-विस्तार?
स्वर्ग की सुषमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार!
प्रसूनों के शाश्वत-शृंगार,
(स्वर्ण-भृंगों के गंध-विहार)
गूंज उठते थे बारंबार,
सृष्टि के प्रथमोद्‌गार!
नग्न-सुंदरता थी सुकुमार,
अर्द्ध और सिद्धि अपार!
अये, विश्व का स्वर्ण-स्वप्न, संसृति का प्रथम प्रभात,
कहाँ वह सत्य, वेद-विख्यात?
दुरित, दुःख-दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरिचित जरा-मरण-भ्रू-पात!
(2)
हाय ! सब मिथ्या बात !-
आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी साँस !
वही मधुऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी, जो यौवन के भार,

अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती, -जीवन है भार !
आज पावस नद के उद्‌गार
काल के बनते चिह्न कराल
प्रातः का सोने का संसार,
जला देती संध्या की ज्वाल।
अखिल यौवन के रंग उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल,
कचों के चिकने, काले व्याल
केंचुली, कांस, सिवार,
गूँजते हैं सबके दिन चार,
सभी फिर हाहाकार !

(3)

आज बचपन का कोमल गात
जरा का पीला पात !
चार दिन सुखद चाँदनी रात
और फिर अन्धकार, अज्ञात !
शिशिर-सा झर नयनों का नीर
झुलस देता गालों के फूल,
प्रणय का चुम्बन छोड़ अधीर
अधर जाते अधरों को भूल !
मृदुल होंठों का हिमजल हास
उड़ा जाता निःश्वास समीर,
सरल भौंहों का शरदाकाश
घेर लेते घन, घिर गम्भीर !
शून्य सांसों का विधुर वियोग
छुड़ाता अधर मधुर संयोग,
मिलन के पल केवल दो, चार,
विरह के कल्प अपार !
अरे, ये अपलक चार-नयन
आठ-आँसू रोते निरुपाय,

उठे-रोओं के आलिंगन
कसक उठते काँटों-से हाय !
(4)
किसी को सोने के सुख-साज
मिल गये यदि घ्ण भी कुछ आज,
चुका लेता दुख कल ही ब्याज,
काल को नहीं किसी की लाज !
विपुल मणि-रत्नों का छबि-जाल,
इन्द्रधनु की-सी छटा विशाल-
विभव की विद्युत-ज्वाल
चमक, छिप जाती है तत्काल,
मोतियों-जड़ी ओस की डार
हिला जाता चुपचाप बयार !
(5)
खोलता इधर जन्म लोचन,
मूँदती उधर मृत्यु क्षण, क्षण,
अभी उत्सव और हास-हुलास,
अभी अवसाद, अश्रु, उच्छ्वास !
अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप,
ओस के आँसू नीलाकाश,
सिसक उठता समुद्र का मन
सिहर उठते उडगन !
(6)
अहे निष्ठुर परिवर्तन!
तुम्हारा ही तांडव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन!
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन!
अहे वासुकि सहस्र फन!

लक्ष्य अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर !
शत-शत फेनोच्छ्वासित,स्फीत फुतकार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व की विवर,
वक्र कुंडल
दिग्मंडल !

(7)

अह दुर्जेय विश्वजित !
नवाते शत सुरवर नरनाथ
तुम्हारे इन्द्रासन तल माथ,
घूमते शत-शत भाग्य अनाथ,
सतत् रथ के चक्रों के साथ !
तुम नृशंस से जगती पर चढ़ अनियंत्रित,
करते हो संसृति को उत्पीड़न, पद-मर्दित,
नग्न नगर कर,भग्न भवन,प्रतिमाएँ खंडित
हर लेते हो विभव,कला,कौशल चिर संचित !
आधि,व्याधि,बहुवृष्टि,वात,उत्पात,अमंगल
वह्नि,बाढ़,भूकम्प,-तुम्हारे विपुल सैन्य दल,
अहे निरंकुश ! पदाघात से जिनके विह्वल
हिल-हिल उठता है टल-मल
पद-दलित धरातल !

(8)

जगत का अविरत हृतकंपन
तुम्हारा ही भय -सूचन,
निखिल पलकों का मौन पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण !
विपुल वासना विकच विश्व का मानस-शतदल
छान रहे तुम,कुटिल काल-कृमि-से घुस पल-पल,
तुम्हीं स्वेद-सिंचित संसृति के स्वर्ण-शस्य-दल

दलमल देते,वर्षोपल बन, वांछित कृषिफल !
अये,सतत् ध्वनि स्पंदित जगती का दिग्मंडल
नैश गगन-सा सकल
तुम्हारा ही समाधिस्थल !
(9)
काल का अकरुण भृकुटि विलास
तुम्हारा ही परिहास,
विश्व का अश्रु-पूर्ण इतिहास
तुम्हारा ही इतिहास।
एक कठोर कटाक्ष तुम्हारा अखिल प्रलयकर
समर छेड़ देता निसर्ग संसृति में निर्भर,
भूमि चूम जाते अभ्र ध्वज सौध, श्रृंगवर,
नष्ट-भ्रष्ट साम्राज्य--भूति के मेघाडंबर !
अये, एक रोमांच तुम्हारा दिग्भू कंपन,
गिर-गिर पड़ते भीत पक्षि पोतों-से उडुगन,
आलोड़ित अंबुधि फेनोन्नत कर शत-शत फन,
मुग्ध भूजंगम-सा, इंगित पर करता नर्तन।
दिक् पिंजर में बद्ध, गजाधिप-सा विनतानन,
वाताहत हो गगन
आर्त करता गुरु गर्जन।
(10)
जगत की शत कातर चीत्कार
बेधतीं बधिर, तुम्हारे कान !
अश्रु स्रोतों की अगणित धार
सींचतीं उर पाषाण !
अरे क्षण-क्षण सौ-सौ नि:श्वास
छा रहे जगती का आकाश !
चतुर्दिक् घहर-घहर आक्रांति।
ग्रस्त करती सुख-शांति !
(11)
हाय री दुर्बल भ्रांति ! -
कहाँ नश्वर जगती में शांति ?

सृष्टि ही का तात्पर्य अशांति !
जगत अविरत जीवन संग्राम,
स्वप्न है यहाँ विराम !
एक सौ वर्ष, नगर उपवन,
एक सौ वर्ष, विजन वन !
–यही तो है असार संसार,
सृजन, सिंचन, संहार !
आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार,
रत्न दीपावलि, मंत्रोच्चार,
उलूकों के कल भग्न विहार,
झिल्लियों की झनकार !
दिवस निशि का यह विश्व विशाल
मेघ मारुत का माया जाल !

(12)

अरे, देखो इस पार–
दिवस की आभा में साकार
दिगंबर, सहम रहा संसार !
हाय, जग के करतार !
प्रात ही तो कहलाई मात,
पयोधर बने उरोज उदार,
मधुर उर इच्छा को अज्ञात
प्रथम ही मिला मृदुल आकार,
छिन गया हाय, गोद का बाल,
गड़ी है बिना बाल की नाल !
अभी तो मुकुट बँधा था माँथ,
हुए कल ही हलदी के हाथ,
खुले भी न थे लाज के बोल,
खिले भी चुंबन शून्य कपोल:
हाय ! रुक गया यहीं संसार
बना सिंदूर अंगार !
वात हत लतिका यह सुकुमार

पड़ी है छिन्नाधार !!
(13)
कांपता उधर दैन्य निरुपाय,
रज्जु-सा, छिद्रों का कृश काय !
न उर में गृह का तनिक दुलार,
उदर ही में दानों का भार !
भूँकता सिड़ी शिशिर का श्वान
चीरता हरे ! अचीर शरीर,
न अधरों में स्वर, तन में प्राण,
न नयनों ही में नीर !
(14)
सकल रोओं से हाथ पसार
लूटता इधर लोभ गृह द्वार,
उधर वामन डग स्नेच्छाचार
नापता जगती का विस्तार !
टिड्डियों-सा छा अत्याचार
चाट जाता संसार !
(23)
कामनाओं के विविध प्रहार
छेड़ जगती के उर के तार,
जगाते जीवन की झंकार
स्फूर्ति करते संचार,
चूम सुख दुख के पुलिन अपार
छलकती ज्ञानामृत की धार !
पिघल होंठों का हिलता, हास
दृगों को देता जीवन दान,
वेदना ही में तपकर प्राण
दमक, दिखलाते स्वर्ण हुलास !
तरसते हैं हम आठोंयाम,
इसी से सुख अति सरस, प्रकाम,
झेलते निशि दिन का संग्राम,

इसी से जय अभिराम,
अलभ है इष्ट, अतः अनमोल,
साधना ही जीवन का मोल !
(24)
बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार,
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसी से दया, क्षमा और प्यार !
(25)
आज का दुख, कल का आह्लाद,
और कल का सुख, आज विषाद,
समस्या स्वप्न गूढ़ संसार,
पूर्ति जिसकी उस पार
जगत जीवन का अर्थ विकास,
मृत्यु, गति क्रम का ह्रास !
(26)
हमारे काम न अपने काम,
नहीं हम, जो हम ज्ञात,
अरे, निज छाया में उपनाम
छिपे हैं हम अपरूपय
गंवाने आए हैं अज्ञात
गंवाकर पाते स्वीय स्वरूप !
(27)
जगत की सुंदरता का चाँद
सजा लांछन को भी अवदात,
सुहाता बदल, बदल, दिन-रात,
नवलता हो जग का आह्लाद !
(28)
स्वर्ण शैशव स्वप्नों का जाल,
मंजरित यौवन, सरस रसालय
प्रौढ़ता, छाया वट सुविशाल,

स्थविरता, नीरव सायंकाल,
वही विस्मय का शिशु नादान
रूप पर मँडरा, बन गुंजार,
प्रणय से बिंध, बँध, चुन-चुन सार,
मधुर जीवन का मधु कर पान,
एक बचपन ही में अनजान
जागते, सोते, हम दिन-रात,
वृद्ध बालक फिर एक प्रभात
देखता नव्य स्वप्न अज्ञात,
मूंद प्राचीन मरण,
खोल नूतन जीवन।

(29)

विश्वमय हे परिवर्तन !
अतल से उमड़ अकूल, अपार
मेघ- से विपुलाकार,
दिशावधि में पल विविध प्रकार
अतल में मिलते तुम अविकार।
अहे अनिर्वचनीय ! रूप पर भव्य, भयंकर,
इंद्रजाल-सा तुम अनंत में रचते सुंदर,
गरज गरज, हँस हँस, चढ़ गिर, छा ढा भू अंबर,
करते जगती को अजस्र जीवन से उर्वर,
अखिल विश्व की आशाओं का इंद्रचाप वर
अहे तुम्हारी भीम मृकुटि पर
अटका निर्भर !

(30)

एक और बहु के बीच अजान
घूमते तुम नित चक्र समान,
जगत के उर में छोड़ महान
गहन चिन्हों में ज्ञान।
परिवर्तित कर अगणित नूतन दृश्य निरंतर,
अभिनय करते विश्व मंच पर तुम मायाकर !

जहाँ हास के अधर, अश्रु के नयन करुणतर
पाठ सीखते संकेतों में प्रकट, अगोचरय
शिक्षास्थल यह विश्व मंच, तुम नायक नटवर,
प्रकृति नर्तकी सुघर
अखिल में व्याप्त सूत्रधर !

(31)

हमारे निज सुख, दुख, निःश्वास
तुम्हें केवल परिहास,
तुम्हारी ही विधि पर विश्वास
हमारा चिर आश्वास !
ऐ अनंत हृत्कंप ! तुम्हारा अविरत स्पंदन
सृष्टि शिराओं में संचारित करता जीवन,
खोल जगत के शत- शत नक्षत्रों-से लोचन,
भेदन करते अंधकार तुम जग का क्षण-क्षण,
सत्य तुम्हारी राज यष्टि, सम्मुख नत त्रिभुवन,
भूप, अकिंचन,
अटल शास्ति नित करते पालन !

(32)

तुम्हारा ही अशेष व्यापार,
हमारा भ्रम, मिथ्याहंकार,
तुम्हीं में निराकार साकार,
मृत्यु जीवन सब एकाकार !
अहे महांबुधि ! लहरों-से शत लोक, चराचर,
क्रीड़ा करते सतत् तुम्हारे रुफीत वक्ष पर,
तुंग तरंगों से शत युग, शत-शत कल्पाँतर
उगल, महोदर में विलीन करते तुम सत्वर,
शत सहस्र रवि शशि, असंख्य ग्रह, उपग्रह, उडुगण,
जलते-बुझते हैं स्फुलिंग-से तुममें तत्क्षण,
अरे विश्व में अखिल, दिशावधि, कर्म वचन, मन,
तुम्हीं चिरंतन
अहे विवर्तन हीन विवर्तन !

(1924)
(यह कविता अभी अधूरी है)

23. छाया-काल

स्वस्ति, जीवन के छाया काल।
सुप्त स्वप्नों के सजग सकाल !
मूक मानस के मुखर मराल !
स्वस्ति, मेरे कवि बाल !
तुम्हारा मानस था सोच्छ्वास,
अलस पलकों में स्वप्न विलास,
आँसुओं की आँखों में प्यास,
गिरा में था मधुमास !
बदलता बादल- सा नित वेश
तुम्हारा जग था छाया शेष,
निशा, अपलक नक्षत्रोन्मेष,
दिवस, छवि का परिवेश !
दिव्य हो भोला बालापन,
नव्य जीवन, पर, परिवर्तन,
स्वस्ति, मेरे अनंग नूतन !
पुरातन मदन दहन।

ग्रंथि

ग्रंथि सुमित्रानंदन पंत की प्रारम्भिक रचनाओं में से एक है। इसका प्रकाशन काल 1920 ई. है। इसे प्रेमाख्यानक गीति काव्य कह सकते हैं। स्वयं पंत ने इसे छोटा-सा खण्ड काव्य कहा है। यह कहना कठिन है कि इसमें कवि की आत्मानुभूति किस मात्रा में उपयोग में आयी है, क्योंकि स्वयं पंत ने इस रचना पर अपने आकाशवाणी आलेख में उन प्रवादों का प्रतिकार किया है, जो इस रचना में व्यक्तिगत पक्ष को लेकर चलते हैं। वे इसे विशुद्ध काव्य प्रयत्न मानते हैं। कालिदास की मेघदूत और अभिज्ञान शाकुंतलम् जैसी रचनाओं से कवि ने अपने काशी प्रवास में जो संस्कार संचित किये थे, उन्हें ही यहाँ उसने कल्पित कथा के सहारे वाणी दी है। ऐसे संदर्भ जैसे नायक की मातृहीनता, मामा द्वारा लालन-पालन आदि कवि

की स्वोक्ति पर भी खरे उतरते हैं, अत: निर्भ्रांत रूप से कुछ भी कहना असम्भव है। सच तो यह है कि 'ग्रंथि', 'उच्छ्वास', 'आँसू' और 'आँसू की बालिका से' शीर्षक रचनाएँ कवि की प्रारम्भिक कृतियों में एक सुनिश्चित शृंखला का निर्माण करती हैं और उनके प्रेम का विप्रलम्भ पक्ष अत्यंत मर्म मधुर बन गया है। उसे कवि की स्वानुभूति ना मानना कठिन है। संकल्पात्मक अनुभूति में उतनी विदग्धता असम्भव है, जितनी इन रचनाओं में दिखायी पड़ती है।

कथानक

'ग्रंथि' की कथा चार भागों में बँटी है, जिनका निर्देश प्रत्येक खंड की पहली पंक्ति के प्रथम दो शब्दों से किया गया है।

प्रथम खंड

प्रथम खंड में कवि कल्पना के प्रति सम्बोधित होकर पूर्व स्मृति को जागृत होने के लिए उसका आह्वान करता है और मधुमास की भूमिका बाँधकर पाठक को अपनी प्रणय गाथा के लिए तैयार करता है। सूर्यास्त के साथ ही नाव ताल में डूब जाती है और नायक जब मूर्च्छा से आँखें खोलता है तो एक कोमल नि:श्वास उसे पुनर्जन्म देता जान पड़ता है। उसे आभास होता है कि उसका सिर किसी बाला की सुकोमल जाँघ पर टिका है, जिसने कदाचित् उसके प्राण बचाये हैं। प्रथम दृष्टि में ही दोनों में प्रेम का संचार हो जाता है और प्रेमी के जिज्ञासा का उत्तर नायिका के मुख से उच्चारित 'नाथ' शब्द की मधुरिमा में झंकृत हो जाता है। प्रथम दर्शन के संकोच, आह्लाद और भाव द्वंद को कवि ने अत्यंत सफलता से अंकित किया है।

दूसरे खंड

दूसरे खंड में नायिका के भाव परिवर्तन को लेकर सखियों की वार्ता उल्लिखित है, जिस पर 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' विद्यावती की पदावली और रीतिकवियों की भाव मधुरिमा का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। अंत में कवि बतलाता है कि इस प्रकार प्रति दिवस सखियों में हुई प्रेमचर्चा नायिका के भाव जगत् को उकसा कर मधुर बना रही थी। इस भाग को कवि का प्रेमदर्शन कहा जा सकता है जिस पर रोमांटिक काव्य की अतींद्रियता और स्वर्गीयता की छाप भी स्पष्ट है।

तीसरे खंड

तीसरे खंड में कवि नायक जीवन के नये मोड़ की सूचना देता है। उसके दु:खद बाल जीवन और कठिन किशोर काल की पृष्ठभूमि देकर वह हमें उस घटना या दुर्घटना के लिए तैयार करता है, जो इस दु:खांतकीय प्रगति का प्राण है। कवि के शब्दों में –

'हाय, मेरे सामने ही प्रणय का,
ग्रंथिबंधन हो गया,
वह नवमधुप-सा मेरा हृदय लेकर,
किसी अन्य मानस का विभूषण हो गया।
पाणि, कोमल पाणि।
निज बंधूक की मृदु हथेली में
सरल मेरा हृदय भूल से यदि लेलिया था,
तो मुझे क्यों ना वह लौटा दिया तुमने पुन:?'

इसके पश्चात् कवि बड़ी भावुकता से अपनी आत्मकथा का चित्रण करता है। प्रकृति की विराट मिलनस्थली में एकमात्र वही सब प्रकार अकेला, कंगाल खड़ा है। वह अपने हृदय को धिक्कारता और उस विमोहक सौंदर्य को भी उपालम्भ देने से नहीं चूकता, जिसने इस प्रकार आँख-मिचौली का खेल खेलकर उसके हृदय में घाव कर दिया। अंत में अपनी वेदना को विश्वव्यापी रूप देकर अपने संताप को हल्का करता है- 'वेदना! कैसा यह उद्‌गार है। वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह, तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में, तारकों में, व्योम में है वेदना। वेदना! कितना विशद् यह रूप है। यह अंधेरे हृदय की दीपक शिखा। रूप की अंतिम छ्टा। और विश्व की अदम चरम अवधि, क्षितिज की परिधि-सी। अंतिम 'प्रेमवंचित खण्ड' में कवि विरहव्यथित नायक के मनोजगत का चित्रण करता हुआ नियति की दुर्वहता की शिकायत कर कथा का पटाक्षेप करता है और विज्ञ वाचक को आश्वस्त कर विदा लेता है कि छलकती आँखों के शेष आँसू-ओं को वह फिर कभी उनके कर कमलों में भेंट देगा।

भाव चित्रण

स्पष्ट ही इस कथानक में भाव चित्रण की ही प्रधानता है और पात्रों का व्यक्तित्व कथा सूत्रों को उभारने में सार्थक है। मिलन की अपेक्षा विरह वर्णन में कवि का मन अधिक रमा है। ऐसा जान पड़ता है कि वय: संधि के हृदय

की अंजान आकुलता को वाणी देने के लिए ही कवि ने इस प्रेमकथा की कल्पना कर डाली है। इसी से कथा और पात्र दोनों वायवीय बने रहे हैं, केवल अव्यक्त हृदय पीड़ा ही विप्रयोग के रूप में प्रकट हुई है। स्वयं पंत इस रचना को द्विवेदी युग की काव्य कला का विकास या प्रसार मानते हैं, अतः इसे हम श्रीधर पाठक की रचना 'एकांतवासी योगी' और 'रामनरेश त्रिपाठी' की 'मिलन', पथिक' और 'स्वप्न' कृतियों तथा प्रसाद की 'प्रेमपथिक' कोटि की रचना ही मान सकते हैं। स्वच्छंद और एकांतिक किशोर प्रेम का उदात्त और मनोनिष्ठ चित्रण इस रचना की विशेषता है।

भाषा-शैली

भाषा और शैली की दृष्टि से यह रचना विशेष महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि 'ग्रंथि' की भाषा द्विवेदी युगीन काव्य भाषा के अधिक निकट है और उसमें इतिवृत्तात्मकता का भी पर्याप्त निर्वाह है, परंतु उसमें 'उपमा कालिदासस्य' के आदर्श का निर्वाह करते हुए कवि जिन अनूठी और सरस उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का संचय करता है, वे रचना को एकदम नयी कोटि दे देती हैं। इस भाव-विदग्ध प्रणय गाथा में अनेक छोटे-छोटे स्मृति-खण्ड अँगूठी में नगीने की तरह जड़ गये हैं। बीच में भविष्यत्, स्मृति, वेदना आदि के प्रति सम्बोधन काव्य को सम्बोधि गीति की मार्मिकता प्रदान करते हैं। यद्यपि इस रचना में कवि का भावबोध परम्परा से एकदम विच्छिन्न नहीं हुआ है, उसका स्वर स्वीकारी ही बना रहा है, परंतु उसमें काव्य का रसात्मक, कल्पनाप्रवण तथा भाषामधुर स्वरूप काव्यचेतना की ओर ही इंगित करता है। सरस और प्रासादिक भाषा में अतुकांत शैली की यह प्रेमगीति पंत की प्राथमिक कृति होने पर भी अपने में पूर्ण कला सृष्टि है।

गुंजन

गुंजन कवि सुमित्रानन्दन पंत का काव्य-संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 1932 में हुआ था। इसे कवि पंत ने अपने प्राणों का 'उन्मन-गुंजन' कहा है। यह संकलन 'वीणा' 'पल्लव' काल के बाद कवि के नये भावोदय की सूचना देती है। इसमें हम उसे मानव के कल्याण और मंगलाशा के नये सूत्र काव्यबद्ध करते पाते हैं। कल्पना और भावना का वह उद्दाभ प्रवाह जो 'पल्लव' की रचनाओं के उन्मादक बनाता है, 'गुंजन' में नहीं है। एक आकर्षक कोमल अभिजात्य से संकलन की रचनाएँ ओत-प्रोत हैं।

1922 और 1927 की रचनाएँ

दो-चार रचनाओं को छोड़कर, जो 1922 और 1927 की रचनाएँ हैं या जिनका रचनाकाल कुछ पहले 1918 तक जाता है, शेष रचनाएँ 1932 की ही सृष्टि हैं। यह वर्ष पंत के कवि-जीवन का मोड़ कहा जा सकता है क्योंकि इससे उनकी संवेदना, अभिव्यंजना तथा चिंतन को नयी दिशा मिलती है। 'मदन-दहन' के बाद नूतन अनंग का यह जन्म स्वयं कवि के स्वस्तिवाचन का विषय बना है।

प्रगीतात्मकता

ग्रंथ 45 गीतियाँ संकलित हैं। इनमें प्रगीतात्मकता के साथ संगीत की स्वर-लहरी भी मिलेगी। वस्तुतः इनमें अनेक रचनाएँ 'गान' की कोटि में आयेंगी। नये गीतकण्ठ ने भाषा-शैली, छन्द और मूर्त-विधान सभी दिशाओं में नया समारम्भ प्रस्तुत किया है। इन प्रगीतों में अंतस का माधुर्य, भावबोध, सौन्दर्य-सम्भार एवं गीत-विलास आशा और मंगल के स्वर-सन्धान के द्वारा सार्थक हुआ है। 'ज्योत्सना' में रूपक के रंग में ढ़ालकर जिस मानव-कल्याण कामना को योजनाबद्ध किया गया है, उसका प्रथम उन्मेष 'गुंजन' की गीतियों में ही मिलेगा। 'पल्लव' काल की कल्पना-प्रचुरता हमें केवल एक रचना 'अप्सरी' में मिलती है, जिसमें कवीन्द्र रवीन्द्र की 'उर्वशी' की छाया स्पष्ट है परंतु जिसमें एक भिन्न कोटि की मायाविनी मानसी को मूर्तिमान किया गया है, जो आदिमकाल से मनुष्य की सौन्दर्य-चेतना को उकसाती रही है। मानव ने अपने चारों ओर जो कल्पना, रहस्य और सौन्दर्य का छाया-जगत बिछाया है, वह इसी छाया-मूर्ति की देन है। इसीलिए रचना के समापन पर कवि कहता है-

'जग के सुख-दुख, पाप-ताप, तृष्णा-ज्वाला से हीन।
जरा-जन्म-भय-मरण-शुन्य, यौवनमीय, नित्यनवीन।
अतल विश्व-शोभा-वारिधि में, मज्जित जीवन-मीन।
तुम अदृश्य अप्सरी, निज सुख में तल्लीन'।

परंतु यहाँ कवि इंद्रजाली कल्पना से नीचे उतर कर ऐसे संयत भाव-चित्रों को ही चुनता है, जो हमारे चिर परिचित आयामों से भिन्न नहीं हैं।

श्रेष्ठतम रचनाएँ

'गुंजन' की श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं- 'नौका विहार', 'एक तारा', 'अधुबन', 'भावी पत्नी के प्रति' और 'चाँदनी'। इन रचनाओं में कवि की आत्मिक

तल्लीनता प्राकृतिक सौन्दर्य तथा रूपात्मक संकेतों के भीतर से नया रसबोध जाग्रत करने में सफल हुई है। विराट, विशृखलित और क्षिप्रगति से बदलते हुए उपमानों के स्थान पर संयत कल्पना चित्र और अमूर्तविधान हमें बराबर आश्वस्त रखते हैं, किंचित्मात्र भी झकझोरते नहीं। इस रचना में पंत का काव्य अभिजात्य की एक सीढ़ी और चढ़ गया है। उसका आत्म नियंत्रण आश्चय-जनक हैं। भावनाओं की बाढ़ जैसे उतर गयी हो और तरुण कवि नये शरदाकाश के उज्ज्वल वैभव को अर्द्ध-दान दे रहा हो। 'चाँदनी' पर दो रचनाएँ हैं और उसे हम कवि की साम्प्रतिक चेतना का बाह्य प्रतीक कह सकते हैं।

पंत का प्रकृति-काव्य

'गुंजन' में कवि का प्रकृति-काव्य अधिक प्राकृतिक हो गया है। उसमें वर्ण्य विषय खुलता है, उपमाओं की झड़ी में मुँद नहीं जाता। प्रकृति की सहज, प्रसन्न, शांत चित्रपटी 'गुंजन' में मिलेगी क्योंकि वही कवि के नये भावपरिवर्तन के अनुकूल है। मधुमास पर लिखी हुई कुछ रचनाओं में वर्ण की चटुलता भी है। परंतु वह क्रीड़ामात्र न होकर यौवन की आंतरिक सम्पन्नता की ही द्योतक है। इस संकलन की दूसरी विशेषता मिलन-सुख और प्रेमोल्लास सम्बन्धी कुछ गीतियाँ है, जो सम्भोग-शृंगार के रीतिकालीन स्वरूप से भिन्न नयी भावमाधुरी से ओत-प्रोत हैं। ये रचनाएँ कवि का मनः कल्प ही कही जा सकती हैं। इन आकांक्षामधुर रचनाओं में जिस नारी-मूर्ति का आह्वान है, वह 'भावी पत्नी के प्रति' और 'रूपतारा, तुम पूर्ण प्रकाम' रचनाओं में पुष्पित हुआ है। 'गुंजन' की ये कविताएँ कवि के 'उच्छ्वास', 'आँसू' प्रभूति विप्रलम्भ काव्य की पूरक हैं। सम्भवतः पिछली रचनाओं से अधिक सहज होने के कारण ये लोकप्रिय भी अधिक हैं। 'गुंजन' की तीसरी दिशा कवि का दार्शनिक चिंतन है, जो वेदांती होकर भी स्वानुभूत सत्य के प्रकाश से ज्योतिर्मान है।

आत्म-साधना का प्रतीक ग्रंथ
कवि जब कहता है–
'मैं प्रेम उच्चादर्शों का,
संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का।
जीवन के हर्ष-विपर्शों का
लगता अपूर्ण मानव-जीवन'

तो हम इन पंक्तियों में उत्तर पंत का समस्त काव्य-विकास झांकता पाते हैं। 'साठ वर्ष' में कवि ने इस काल की अपनी निर्जनता की भावना का उल्लेख किया है और एकाकी जीवन को चिंतन, भावना और आत्म-संस्कार से भरने का प्रयत्न ही 'गुंजन' है। इसलिए अनेक गीतियों में कवि अपने मन से सम्बोधित होता है और उससे खिलने अथवा तपने का आग्रह करता है। वास्तव में 'गुंजन' पंत की आत्म-साधना का प्रतीक ग्रंथ है।

प्रकृति-सौन्दर्य से मानव-सौन्दर्य तक

आत्म-साधना साधना प्रकृति-सौन्दर्य से आगे बढ़कर मानव-सौन्दर्य तक पहुँचती है। इसमें जीवन के आनन्द, उल्लास, सहज संवेदन तथा माधुर्य का प्रकाश भरा गया है। सब कुछ जैसे जादू की छड़ी से सुन्दर और सार्थक बन गया है। इस सुन्दरता का केन्द्र मानव है, जो प्रकृति के आनन्द, उल्लास और सौन्दर्य का मूल है। इसी मानव को पंत ने अपनी मंगल-कामना समर्पित की है। यह ठीक है कि 'गुंजन' की मंगल-कामना अनिर्दिष्ट है, उसमें किसी प्रकार का तंत्र या 'वाद' दर्शित नहीं होता, परंतु कवि के सहज, सौम्य, प्रसन्नचेता व्यक्तित्व के माध्यम से प्रकृति और मानव के समस्त सुन्दर और शोभन आयामों का संकलन स्वत: हो जाता है।

बालसुलभ चापल्य

लगता है, कवि बालसुलभ चापल्य और वय:सन्धि के स्वप्नों को पीछे छोड़कर तथा कौसानी की चित्रशलभ-सी पंख खोलकर उड़ने वाली घाटी से नीचे उतर कर गंगा के उन्मुक्त कछार में आ गया है और उसकी कवि-चेतना से नीलाकाश में आबद्ध अनंत-दिक प्रसाद को हृदयंगम किया है। उत्तर पंत की रचनाएँ यहीं से आरम्भ होती हैं और निरंतर नये आयाम ग्रहण करती जाती हैं।

चिदंबरा

चिदंबरा हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार स्तम्भों में से एक सुमित्रानन्दन पंत की रचना है। सुमित्रानन्दन पंत के श्रेष्ठ कविता संग्रहों में 'चिदंबरा' को गिना जाता है। 'चिदंबरा' के लिए पंत जी को वर्ष 1961 में 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था। 'चिदंबरा' का प्रकाशन राजकमल प्रकाशन द्वारा किया गया था।

विषय

यह कविता संग्रह सुमित्रानन्दन पंत की काव्य-चेतना के द्वितीय उत्थान की परिचायिका है। इसमें 'युगवाणी' से लेकर 'अतिमा' तक की रचनाओं का संचयन है, जिसमें 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि', 'युगपथ', 'युगांतर', 'उत्तरा', 'रजतशिखर', 'शिल्पी', 'सौवर्ण' और 'अतिमा' की चुनी हुई कृतियों के साथ 'वीणा' की अंतिम रचना 'आत्मिका' भी सम्मिलित है। 'पल्लविनी' में सन् 18 से लेकर 36 तक, उनके उन्नीस वर्षों को संजोया गया है, और 'चिदंबरा' में सन् 37 से 57 तक, प्रायः बीस वर्षों की विकास श्रेणी का विस्तार है।

सुमित्रानन्दन पंत की द्वितीय उत्थान की रचनाएँ, जिनमें युग की, भौतिक आध्यात्मिक दोनों चरणों की, प्रगति की चापें ध्वनित हैं, समय-समय पर विशेष रूप से, कटु आलोचनाओं एवं आक्षेपों की लक्ष्य रही हैं। ये आलोचनाएँ प्रकारांतर से उस युग के साहित्यिक मूल्यों तथा रूप-शिल्प संबंधी संघर्षों तथा द्वन्द्वों की निदर्शन हैं, और स्वयं अपने आप में एक मनोरंजक अध्ययन भी। आने वाली पीढ़ियाँ निश्चयपूर्वक देख सकेंगी कि उस युग का साहित्य, विशेषकर, आलोचना क्षेत्र, किस प्रकार संकीर्ण, एकांगी, पक्षधर तथा वादग्रस्त रहा है और उसमें तब की राजनीतिक दलबंदियों के प्रतिफल स्वरूप किस प्रकार मान्यताओं तथा कला-रुचि संबंधी साहित्यिक गुटबंदियाँ रही हैं। भविष्य निश्चय ही इस युग के कृतित्त्व पर अधिक निष्पक्ष निर्णय दे सकेगा, काल ही वह राज-मराल है, जो नीर-क्षीर विवेक की क्षमता रखता है।

लेखक का कथन

इस कविता संग्रह के विषय में सुमित्रानंदन पंत जी ने स्वयं लिखा है- 'चिदंबरा की पृथु-आकृति में मेरी भौतिक, सामाजिक, मानसिक, आध्यात्मिक संचरणों से प्रेरित कृतियों को एक स्थान पर एकत्रित देखकर पाठकों को उनके भीतर व्याप्त एकता के सूत्रों को समझने में अधिक सहायता मिल सकेगी। इसमें मैंने अपनी सीमाओं के भीतर, अपने युग के बहिरंतर के जीवन तथा चैतन्य को, नवीन मानवता की कल्पना से मण्डित कर, वाणी देने का प्रयत्न किया है। मेरी दृष्टि में 'युगवाणी' से लेकर 'वीणा' तक मेरी काव्य-चेतना का एक ही संचरण

है, जिसके भीतर भौतिक और आध्यात्मिक चरणों की सार्थकता, द्विपद मानव की प्रकृति के लिए सदैव ही अनिवार्य रूप से रहेगी। पाठक देखेंगे कि इन रचनाओं में मैंने भौतिक-आध्यात्मिक, दोनों दर्शनों से जीवनोपयोगी तत्त्वों को लेकर, जड़-चेतन सम्बन्धी एकांगी दृष्टिकोण का परित्याग कर, व्यापक सक्रिय सामंजस्य के धरातल पर, नवीन लोक जीवन के रूप में, भरे-पूरे मनुष्यत्व अथवा मानवता का निर्माण करने का प्रयत्न किया है, जो इस युग की सर्वोपरि आवश्यकता है?

ग्राम्या

ग्राम्या का प्रकाशन समय 1940 ई. है। सुमित्रानंदन पंत की 53 कविताओं का संकलन है। उनके काव्य संकलनों में इसकी संख्या छठी है। 'युगवाणी' में पंत की संवेदना का चिंतन पक्ष या धारणा पक्ष सामने आता है। 'ग्राम्या' में सहानुभूति के माध्यम से पंत का चिंतन ग्रामीण जीवन के आवर्तों विवर्तों को छूना चाहता है। इस प्रकार 'युगवाणी' कवि की मार्क्सवादी चिंता का बौद्धिक पक्ष है तो 'ग्राम्या' काव्यात्मक और व्यावहारिक पक्ष। उसे हम युगवाणी की क्रियात्मक भूमिका भी कह सकते हैं। इस रचना के सम्बंध में स्वयं कवि ने निवेदन में लिखा है -

'इनमें पाठकों को ग्रामीणों के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है। ग्राम जीवन में मिलकर, उसके भीतर से, अवश्य नहीं लिखी गयी है। ग्रामों की वर्तमान दशा में वैसा करना केवल प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता।'

इस वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि कवि ने अपनी सहानुभूति के पंख बाँध दिये हैं और उसकी उड़ान मर्यादित है। ग्राम्या के प्रगीतों में पंत का अभिव्यंजन सम्बंधी दृष्टिकोण 'वाणी' शीर्षक रचना से प्रकट हो जाता है, जिसमें वह चुनौती के स्वर में अपनी वाणी से सम्बोधित होता है-

'तुम वहन कर सको जन जन में मेरे विचार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।'

'कवि किसान' शीर्षक रचना में उन्होंने कवि को युग का सांस्कृतिक नेता मानकर चेतना भूमि में चिर जीर्ण विगत की खाद डालने, उसे सम बनाने, बीज रोपण करने और निराने का रूपक बाँधा है। यह नयी दृष्टि उसके कवि कर्म की नयी दिशा पर प्रकाश डालती है।

मानवता का चित्रण

परंतु अभिव्यंजना के क्षेत्र की यह नवीनता ही कवि का लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य है धरती के समीप सिमटकर रहने वाली काली कुरूप और उच्छिष्ट मानवता का चित्रण। कवि ग्रामीण जीवन और संस्कारों को निर्ममता से देखता परखता है। वह उनके ऊपर रोमांस का झीना आवरण नहीं चढ़ाना चाहता। उसकी पहुँच बौद्धिक है, भाविक नहीं। इसी से उसने ग्राम को स्वर्ग के रूप में कल्पित नहीं किया है। उसका ग्राम कल्पना का ग्राम ना होकर यथार्थ ग्राम है जहाँ –

'यहाँ, खर्व नर, वानर रहते युग युग के अभिशापित।
अन्न, वस्त्र, पीड़ित असभ्य, निर्बुद्धि, पंक में पालित।
यह तो मानव लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित।
यह भारत का ग्राम, सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित।
झाड़ फूँक के विवर, यही क्या जीवन शिल्पी के घर?
कीड़ों से रेंगते कौन ये? बुद्धिप्राण नारी नर?
अकथनीय क्षुद्रता, विवशता भरी यहाँ के जग में।
गृह गृह में कलह, खेत में कलह, कलह है मग में।' – ग्रामचित्र

ग्रामीण जीवन

ग्रामीण जीवन की इस करुणा को कवि ने 'भारत ग्राम', ग्राम वधू, ग्राम देवता, वह बुढ़ा, गाँव के लड़के, वे आँखें, कठपुतले, ग्राम नारी आदि रचनाओं में बड़ी सहानुभूति से उतारा है। उसने विश्व को ग्रामीण नयनों से देखना चाहा है और ग्राम दृष्टि शीर्षक रचना में अपने इस नये दृष्टिकोण को उजागर भी किया है। इन रचनाओं में हम जीवन की कुरूपता और कठोरता का ऐसा चित्र पाते हैं, जो हमें स्तम्भित कर देता है, विशेषत: 'वे आँखें' जैसी रचना में उभरता हुआ चित्र। ये आँखें स्वाधीन किसान की अभिमान भरी आँखें थीं, जिसके जीवन ने उससे छल किया। उसके लहराते खेत बेदखल हो गये, एकमात्र पुत्र भरी जवानी में कारकुनों की लाठी से मारा गया, महाजन ने बैलों की हृष्ट-पुष्ट जोड़ी बिकवा दी, बिना दवा-दारू के गृहणी चल बसी, दुधमुँही बिटिया दो दिन बाद मर गयी और अंत में विधवा पतोहू ने कोतवाल द्वारा बलात् भ्रष्ट किए जाने पर कुँए में डूबकर प्राण दे दिए। इन आँखों का अथाह नैराश्य, उनका दारुण दु:ख दैन्य और

नीरव रोदन नागरी संस्कृति के लिए धिक्कार है। इस धिक्कार को दग्धाक्षरों में बाँध कर काव्य का रूप देना साधारण कार्य नहीं है, यद्यपि जीवन के इस कठोर वास्तविकता को काव्य के दर्पण में देखने के लिए समीक्षक तैयार नहीं थे।

मानव-भाव का संसार

एक अन्य प्रकार का ग्राम भी इन रचनाओं में उभरा है, कदाचित् कवि के अनचाहे-यह सुन्दरता, उल्लास, नृत्य, पर्व, आभोद-प्रमोद और वर्ण संस्कारों आदि के भीतर से ही झाँकता हुआ उद्दाम मानव-भाव का संसार है। 'ग्रामयुवती', 'धोबियों का नृत्य', 'ग्राम-श्री', 'नहान', 'चमारों का नाच', 'कहारों का रुद्र-नृत्य' जैसी रचनाएँ इन नये ग्राम से भी हमारा परिचय कराती हैं। यह ग्राम जीवन की ऊर्जा से ओतप्रोत, कुसंकारों में आबद्ध, परंतु प्राणवान मानव-चेतना से आन्दोलित सांस्कृतिक इकाई है। ग्रामीण जीवन के इस सौन्दर्य को उद्‌घाटित करने के लिए कवि को नयी भाषा शैली, नये छून्द, नयी दिशा में भी पूर्णतः सफल है। उसकी तूलिका वर्णन-कला में सिद्ध होती गयी है और ग्राम-जीवन की प्रतिनिधि ये रचनाएँ अनाविल सौन्दर्य और रेखा विरल चातुर्य से पूर्ण हैं परंतु बौद्धिकता से अनुशासित रहने पर भी इन रचनाओं में भारतीय जन-जीवन का अवचेतनीय सौन्दर्य असंख्य रंगों-रूपों में खिल पड़ा है।

केन्द्रीय रचनाएँ

सुमित्रानंदन पंत की हस्तलिपि में 'ग्राम्या' की भूमिका
संकलन की केन्द्रीय रचनाएँ दो हैं-
'भारत-माता', जो नवोदित भारत-राष्ट्र का जनवाद बन गयी है
'ग्राम-देवता', जिसमें कवि भारतीय जनवाद का समर्थक बनकर ग्राम-संस्कृति के प्रति अपना अभिवादन प्रकट करता है।

ग्राम-देवता की प्रशास्ति

नये मानवतावाद में जन-संस्कृति को समाविष्ट करने की लालसा इस रचना में परिव्याप्त है। ग्राम-देवता की यह प्रशास्ति व्यंगप्राण होकर भी नवयुग के लिए अशेष आशीष बन गयी है क्योंकि इसी से हमने ग्राम-भारत के यथार्थ रूप को पहचाना है। रचना का धरातल बौद्धिक है और उसमें कवि की अद्यतन

चिंता की स्पष्ट झलक है परंतु उसकी सप्राणता उसमें पर्याप्त भावुकता का संचार कर देती है। नि:सन्देह यह रचना 'ग्राम्य' का शीर्ष है।

प्रौढ़ चिंतन और चित्रण

अन्य संकलनों की शाँति 'ग्राम्य' में प्रकृति-पटकों खुली आँखों और विरल रंग-रेखाओं से उतारते हैं। अधिकाँश रचनाओं में प्रकृति पृष्ठभूमि बनकर आयी है परंतु उसने ग्राम- शोभा में वृद्धि ही की है। 'सन्ध्या के बाद', 'दिवास्वप्न', 'खिड़की से' जैसी रचनाएँ हमें कवि की परिचित मनोभूमि की झाँकी देती हैं यद्यपि प्रौढ़ता के साथ चिंतन और चित्रण के क्षेत्र में काफी परिवर्तन भी हुआ है, जो विकास समान कलाकार के अनुरूप ही कहा जा सकता है।

आधुनिक नारी का चित्रण

अंतिम श्रेणी ऐसी कविताओं की है, जिसमें कवि ने आधुनिक नारी को चित्रित किया है और उसके अस्वाभाविक जीवनदर्शन तथा क्रियाकलाप के प्रति लज्जा प्रकट की है। 'आधुनिका', 'नारी', 'स्वीट पीके प्रति', 'द्वन्द्व प्रणय' जैसी रचनाओं में कवि ग्रामीण और श्रमिक नारी के स्वरूप प्रणय के समकक्ष अभिजाती प्रेम की कृत्रिमता और आत्महीनता को उभारकर रख देता है। यह उसके चिंतन की नयी दिशा है, जो बाद में उसकी सांस्कृतिक विचारधारा का महत्त्वपूर्ण अंग बन गयी है। इन कविताओं का रचनाकाल द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका से त्रस्त था, अत: पंत का काव्य चिंतन जनजीवन की ओर मुड़ा और उन्होंने हिंसा-अहिंसा के द्वन्द्व से ऊपर उठकर तरुण शक्ति को ग्रामों की ओर ललकारा, शीर्षक कविता में उसका वह स्वर स्पष्ट है - 'बन्धन बन रही अहिंसा आज जनों के हित'।

उत्तरा

उत्तरा, सुमित्रानंदन पंत का दसवाँ काव्य-संकलन है। इसका प्रकाशन समय 1949 ई. है। उत्तरा को 'स्वर्ण-धूलि' और 'स्वर्ण-किरण' का ही भाव प्रसार कहना उपयुक्त होगा क्योंकि इसमें भी कवि ने चेनतावादी अरविन्द दर्शन को मूलाधार माना है।

संकलन की विशेषताएँ

इस संकलन की 75 रचनाओं में कवि की भावधारा का रूप प्रायः वही है, जो उपर्युक्त दो संकलनों में मिलता है, परंतु भावभूमि अधिक व्यापक, सुस्पष्ट और परिमार्जित हो गयी है तथा अभिव्यंजना भी सहज, प्रासादिक एवं विविध है। 'उत्तरा' की प्रस्तावना में कवि ने अरविन्द-दर्शन के ऋण को स्वीकार करने के साथ अपनी नयी मनोभूमि का विश्लेषण भी किया है और अपने नवीन जीवन-तंत्र की व्याख्या भी प्रस्तुत की है, जो भौतिक और आध्यात्मिक जीवन-पद्धतियों के समीकरण एवं परिष्करण में विश्वास रखता है। कवि इस भूमिका में भारतीय दर्शन के प्रति एक नया दृष्टिकोण सामने लाता है-

भारतीय दर्शन भी आधुनिक भौतिक दर्शन (मार्क्सवादी) की तरह सत्य के प्रति एक उपनयन (एप्रोच) मात्र है, किंतु अधिक परिपूर्ण, क्योंकि वह पदार्थ, प्राण (जीवन), मन तथा चेतना (स्पिरिट), रूपी मानव, सत्य के समस्त धरातलों का विश्लेषण तथा संश्लेषण कर सकने के कारण उपनिषत् (पूर्ण एप्रोच) बन गया है।

इस चिंतन को आगे बढ़ाकर कवि गाँधीवादी विचारधारा को विश्व चिंतन का अनिवार्य अंग मानता है। पंत के विचार में -

भारत का दान विश्व को राजनीतिक तंत्र या वैज्ञानिक तंत्र का दान नहीं हो सकता, वह संस्कृत और विकसित मनोयंत्र की ही भेंट होगी। इस युग के महापुरुष गांधी जी अहिंसा को एक व्यापक सांस्कृतिक प्रतीक के ही रूप में दे गये हैं, जिसे हम मानव-चेतना का नवनीत, अथवा विश्व मानवता का एकमात्र सार कह सकते हैं।

इस प्रकार कवि गांधीवाद के सत्य-अहिंसा के सिद्धांतों को अंतः संगठन (संस्कृति) के दो अनिवार्य उपादान मानता है, परंतु सत्य की व्यवस्था में उसने दो भेद माने हैं- एक ऊर्ध्व अथवा आध्यात्मिक और दूसरा समदिक-जो हमारे नैतिक और सामाजिक आदर्शों के रूप में विकासोन्मुख होता है। इस योजना के द्वारा कवि को अपने नये राजनीतिक और गांधीवाद के साथ रखने की सुविधा प्राप्त हुई है। फलतः वह मानव-विकास के अंतर्वहि 'चेतना स्त्रोतों को अधिक व्यापक और संतुलित चिंतन दे सका है। 'उत्तरा' की कविताएँ इसी मनोभूति का काव्य चित्र हैं। उनमें चिंतन की अपेक्षा ग्रहण, आस्वादन और आनन्द ही अधिक उभरा है। इसी में उनकी विशिष्टता भी समझी जा सकती है।

नये युग की गीता

'उत्तरा' के गीत नये युग की गीता है। इन गीतों में सद्यः स्वतंत्र भारत की अंतरात्मा के पुनर्निर्माण की चेतना स्पष्ट है। गीतों की भूमि बौद्धिक वाद-विवाद को प्रश्रय नहीं देती। कवि का मन अतर्क्य, अचिंत्य है। वह क्रांतदर्शी है। नये भू-मन की अनिवार्यता के प्रति उसका दृढ़ विश्वास है और वह उसका अभिनन्दन करना चाहता है। उसकी आस्था है कि इस नये परिवर्तन को पहले कवि ही अपने मन में मूर्तिमान करेगा। इसीलिए उसके कई गीतों में उसकी भावसाधना के स्वरूप को वाणी मिली है। यहाँ वह नवजीवन का शिल्पी कलाकार बन जाता है जिसका प्रत्येक प्रहार प्रस्तर के उर में छिपी नव-मानवता को उत्कीर्ण करने में समर्थ है।

'स्वप्नक्रांत' शीर्षक रचना में वह अपने उत्तरदायित्व का प्रकाशन इन शब्दों में करता है-

'स्वप्न-भार से मेरे कन्धे,
झुक पड़ते भू-पर,
कलांत भावना के पग डगमग,
कँपते उर में निःस्वर।
ज्वालगर्भ शोणित का बादल,
लिपता धराशिखर पर उज्ज्वल,
नीचे, छाया की घाटी में जगता क्रन्दन मर्मर।'

इसी प्रकार 'युगसंघर्ष' मेंरू

'गीतक्रांत रे इस युग के कवि का मन,
नृत्यमत्त उसके छन्दों का यौवन।
वह हँस-हँसकर चीर रहा तम के धन,
मुरली का मधुरव कर भरता गर्जन।
नव्य चेतना से उसका उर ज्योतित,
मानव के अंतवैभव से विसामित।
युगविग्रह में उसे दीखती बिंबित,
विगत युगों की रुद्ध चेतना सीमित।'

'जीवनदान', 'स्वप्न-वैभव', 'अवगाहन', 'भू-स्वर्ग', 'गीताविभव', 'नव-पावक', 'अनुभूति', 'काव्यचेतना' और 'गीतविहग' शीर्षक रचनाओं में

कवि की अपने प्रति जागरूकता और आस्था ही प्रकट होती है। उसका विश्वास है कि वह नयी चेतना का अग्रदूत है। वह कहता है–

'मैं रे केवल उन्मन मधुकर,
भरता शोभा स्वप्निल गुंजन,
कल आयेंगे उर तरुण भृंग,
स्वर्णिम मधुकण करने वितरण (नवपादक)।'

इन रचनाओं में हम कवि को केवल उद्‌गाता के रूप में ही नहीं पाते, वह नये यज्ञ का अध्वर्यु भी बन जाता है। सामान्यत: यह आरोप लगाया जाता है कि पंत का चेतनावाद उनकी मौलिक प्रेरणा नहीं है, परंतु कवि ने अरविंदवाद की भूमिका पर किस प्रकार आस्था, प्रेम, उल्लास और सौन्दर्य के नये–नये रंगों की रंगोली बनायी है, इसकी ओर आलोचकों का ध्यान ही नहीं जाता। विचार, धर्म और दर्शन काव्य के क्षेत्र से बहिष्कृत नहीं किये जा सकते। देखना यह है कि उनमें कवि के स्वप्न बन जाने की सामर्थ्य है या नहीं अथवा वे कवि की कल्पना और भावुकता को गर्भित करने में सफल हैं या नहीं। पंत की रचनाओं में दिव्य जीवन की दार्शनिक और ऊहात्मक अभिव्यक्ति नहीं हुई है। वे भावप्रवण कवि की प्रत्यक्षानुभूति और संकल्पसिद्धि के उल्लास से ओत–प्रोत हैं। उनमें बहिरंतर–रूप को कल्पना,भावना, सौन्दर्य और भावयोग को विषय बनाया गया है, अत: इन रचनाओं को हम अरविन्दवाद का काव्य संस्करण अथवा भावात्मक परिणति भी मान सकते हैं।

पीढ़ी का संघर्ष

'उत्तरा' का आरम्भ, 'युगविषाद्', 'युगसन्धि', 'युगसंघर्ष' जैसी रचनाओं से होता है जिनमें कवि अपनी पीढ़ी के संघर्षों से उत्पन्न घनी भूत पीड़ा को वाणी देता है। इस मनोभाव से कवि का शीघ्र ही त्रण हो जाता है और वह चित्सत्ता के प्रति विनत होकर प्रार्थी होता है–

'ज्योतिद्रवित हो, हे घन।
छाया संशय को तुम,
तृष्णा करती गर्जन,
ममता विद्युत–नर्तन,
करती उर में प्रतिक्षण।
करुणा–धारा में झर स्नेह–

अश्रु बरसा कर,
व्यथा-भार उरका हर,
शांत करो आकुल मन।' (अंतर्व्यथा)

वह प्रार्थना उसके मन में जागरण के नये द्वार खोल देती है। स्वयं कवि नव-मानव का प्रतीक बन जाता है और 'अग्निचक्षु' कहकर अपना अभिवादन करता है। इस नव मानव को घेरकर ही उसके नव-मानववादी सपने मँडराते हैं। 'उत्तरा' में इन नये सपनों को मुक्त छोड़ दिया गया, किसी बौद्धिक तंत्र में नहीं बाँधा गया। इसी से उनमें भावोद्वेलन की अपार शक्ति है। 'भू-जीवन', 'भू-यौवन', 'भू-स्वर्ग' और 'भू-प्रांगण' शीर्षक रचनाओं में उत्तर पंत भावजगत की जिस मधुरिमा को वाणी देते हैं, वह अंतर्राष्ट्रीय ही नहीं, सार्वभौमिक है क्योंकि उसका उत्स मानव की अंतरात्मा है। पंत की इस नयी विचारणा को भू-वाद कहा गया है और स्वयं उन्होंने भूमिकाओं और निबन्धों में अपने इस नये जीवन-दर्शन को तंत्र की व्यवस्था देने की चेष्टा की है परंतु कविता में जो मनोमय स्वप्न-सृष्टि इस विचारणा से जाग्रत है उसकी अपनी सार्थकता है। वह चिर नवीन जीवननैषणा के सौरभ से गन्धमधुर बन गयी है। कवि ने कुछ रचनाओं में जैसे- 'जागरण-गान', 'उद्बोधन' आदि में भारत के तारुण्य को इस 'असिधारव्रत' के लिए ललकारा है, जो मनोदधि का मंथन कर वृद्ध धरा पर नये चेतना-स्वर्ग का निर्माण करने में समर्थ है। उससे मानव को देवोत्तर और भारत-भू को स्वर्ग-भू बनाने की चुनौती दी है।

प्रकृति-काव्य

'उत्तरा' का प्रकृति-काव्य भी एक नयी सुषमा से ओत-प्रोत है, जो 'स्वर्ण-किरण' की प्रकृति चेतना की परिणति है परंतु उसमें भावना और सौन्दर्य चेतना के जो शत-शत कमल खिले हैं, वे अपनी प्रतिभा में स्वयं पंत के प्रौढ़ व्यक्तित्व और उनकी अंतः साधना का जैसा बहुमुखी, सार्थक और समर्थ प्रकाशन है वैसा कदाचित् कोई दूसरा संकलन नहीं। कवि का विषादग्रस्त मन अनेक विचार-विवर्तों और भाववर्तों में खुलकर नव-जागरण की दीपशिखा में बदल जाता है। युग के गरलका आकण्ठ पान कर उसने नीलकंठ शिव की भाँति नवचेतना का वरदान ही बिखेरा है। इस आंतरिक और आध्यात्मिक साधना की परिपूर्णता और उत्कर्षमयता का प्रतीक वे प्रकृति रचनाएँ हैं, जो मानव-चेतना के रूपांतर को ही नया रूप रंग देती हैं।

अध्यात्म चेतना का महागीत

इसमें सन्देह नहीं कि 'गुंजन' की भाँति ही 'उत्तरा' भी कवि की अंतर्मुखी सौन्दर्यसाधना और अध्यात्म चेतना की महागीति है। उसकी स्फुट रचनाओं में अतिमानसी ऊर्ध्व-चेतना और अधिमानसी-चेतना के सारे सरगम दौड़ गये हैं। कुछ आत्मा के अकुंठित और अपरिमेय सौन्दर्य एवं उल्लास के नाते ही मनोरम हो उठा है।

स्वर्ण-किरण

स्वर्ण-किरण सुमित्रानन्दन पंत का आठवाँ काव्य संकलन है, जिसका प्रकाशन 1947 ई. में हुआ था। स्वर्ण-किरण में 38 रचनाएँ संग्रहीत हैं। इन रचनाओं में अंतिम दो रचनाओं 'स्वर्णोदय' और 'अशोकवन' का आधुनिक हिन्दी काव्य में अपना निश्चित स्थान है। दोनों लम्बी रचनाएँ हैं। 'स्वर्णोदय' मानव-शिशु के जन्म, विकास, प्रौढ़त्व और अवसान की सम्पूर्ण जीवनगाथा है। इसे उत्तर रचनाओं में वही स्थान प्राप्त होना चाहिये, जो किशोर रचनाओं में 'परिवर्तन' को प्राप्त है। 'अशोकवन' में 19 प्रगीत हैं, जिनमें अधिकांश सम्बोधि-गीत कहे जा सकते हैं। इन प्रगीतों में रामकथा के माध्यम से चेतनावाद की प्रतीकात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। शेष रचनाओं को हम कई वर्गों में रख सकते हैं। सच तो यह है कि यह संकलन उत्तर पंत के व्यक्तित्व का अन्य संकलनों की अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर रूप में प्रतिनिधित्व करता है। सुविधा की दृष्टि से संकलन की रचनाओं को चेतनावादी (अरविन्दवादी), प्रकृतिवादी, प्रशस्ति मूलक और व्यंग्य रचनाओं के शीर्षक दे सकते हैं। परंतु सभी रचनाओं में कवि की नूतन जीवन दृष्टि, उसका नया अध्यात्मवाद और नवीन जीवनोल्लास दृष्टिगत होता है। छन्दों की भूमि प्रयोगात्मक न होकर भी नयी भावाभिव्यंजना में समर्थ है।

चेतनावादी रचनाएँ

चेतनावादी रचनाओं की शीर्षमणि 'श्री अरविन्द दर्शन' शीर्षक रचना है। इस रचना में कवि योगी अरविन्द के साक्षात्कार से उत्पन्न व्यक्तिगत प्रभाव को ऊर्ध्व चेतना का रूप दे देता है। उन्हें दिव्य जीवन का दूत मानकर कवि तन, मन, प्राण, हृदय समर्पित करता है। उसके अनुसार युग-युग के पूजन-आराधन, जप-तप और शास्त्र अरविन्द की साधना और वाणी के कृतार्थ हो उठे हैं। वह

उनमें अवतारी दैवत्व की कल्पना करता है और उन्हें ब्रह्मविद्या का ज्योति-स्तम्भ मानकर उनकी प्रशस्ति गाता है।

प्रकृतिवादी रचनाएँ

संकलन की दूसरी कोटि प्रकृतिवादी रचनाओं की है, जहाँ कवि की प्रकृति-चेतना 'पल्लव', गुंजन' और 'ग्राम्या' की तीन संस्थानक भूमियों को छोड़कर नयी आध्यात्मिक भूमि पर संचरण करती है। फलतः प्राकृतिक सौन्दर्य उसके लिए आत्मिक सौन्दर्य का प्रतिनिधि और भविष्यकल्पी समाज चेतना तथा जीवन-संस्कार का प्रतीक बन जाता है। इन रचनाओं में न गहरे ऐन्द्रिक रंगों की चटुलता है, न मंगलाकांक्षी आत्मा की प्रसन्नचेतना मात्र, न विवरणात्मक वस्तु-चित्रण, जो बौद्धिक चेतना का प्रसार हो। इसके विपरित इन प्राकृतिक रचनाओं में आत्म और परकी सीमाएँ नष्ट हो गयी हैं और प्रकृति तथा मानव एक ही दैवी चेतना से ओत-प्रोत अधिमानसी भूमिका मात्र जान पड़ते हैं। इन रचनाओं की शब्दावली और भाव-चयन पर कवि के वैदिक अध्ययन, प्रमुखतः उषा सबन्धी ऋचाओं का प्रभाव भी लक्षित है। कवि बार-बार 'पल्लव' की प्रचुर कल्पना और भावपूर्ण सौन्दर्य भूमि की ओर लौटता है, जिससे वायवीय और आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक होने पर भी इन रचनाओं में पर्याप्त मांसलता आ गयी है। 'हिमाद्रि' शीर्षक रचना इस संकलन की सर्वश्रेष्ठ प्रकृति-कविता कही जा सकती है क्योंकि उसमें हिमालय का वस्तु-सौन्दर्य कवि की चेतना के भाव-सौन्दर्य और अतिमानवीय सजगता का प्रतिरूप बन गया है। 'पूषण' 'चन्द्रोदय', 'मत्स्यगन्धाएँ' इत्यादि रचनाएँ प्राकृतिक सन्दर्भों को लेकर एक नये अतीन्द्रिय भाव-जगत् की सृष्टि करती हैं, जहाँ सभी सुन्दर, आत्मिक तथा अतिमानसीय बनकर चमत्कारी हैं।

प्रशस्तिमूलक रचनाएँ

प्रशस्तिमूलक रचनाएँ नोआखाली के महात्मा जी और पण्डित जवाहर लाल नेहरू के प्रति हैं, जिन्हें कवि ने अपनी नवीन चेतना से सम्बद्ध किया है। 'कौवे के प्रति' रचना कवि के उस समरस भाव की ओर संकेत करती है, जो निन्दनीय से भी रस ग्रहण कर सकता है। इस रचना में कवि ने पक्षपात को कामना का मूल कहा है, जो समस्त दुखों का कारण है और काककण्ड में संतुलन और समरसत्त्व का पाठ पढ़ा है।

सर्वश्रेष्ठ रचना 'स्वर्णोदय'

'स्वर्णोदय' को कवि ने 'जीवन-सौन्दर्य' उपशीर्षक दिया है। मानव-जीवन के विकासमान आयामों में चिरंतन सौन्दर्य की अभिव्यंजना पाना ही रचना में कवि का उद्देश्य है। इसीलिए कवि बालक के जन्म से लेकर उसके पितामही जीवन तक सारा मनस्तत्त्व बड़ी सूक्ष्म और पैनी दृष्टि से पकड़ता है और वर्द्धमान जीवन चेतना के उस धाराप्रवाह को रूपायित करता है, जो विविध जीवन-स्थितियों में अंतरंगी मणिसूत्र की तरह पिरोया हुआ है। यह अकेली रचना आधुनिक हिन्दी कविता की प्रौढ़ता का प्रतिनिधित्त्व कर सकती है। पंत की रचनाओं में इसका स्थान सर्वश्रेष्ठ रहेगा। प्रौढ़ जीवनानुभूति, संतुलित जीवन-दर्शन और दार्शनिक ऊहा की समर्थ, काव्यमय तथा व्यंजक अभिव्यक्ति इस रचना को प्रथम पंक्ति देती है। बदलती हुई मनोवृत्तियों का ऐसा छाया प्रकाशमय विशद् चित्र अन्यत्र दुर्लभ है। बीच-बीच में अवस्थानुरूप भाव परिवर्तन को प्राकृतिक ऋतु-परिवर्तन की प्रतीक रचना द्वारा मूर्त किया गया है। रचना के अंत में प्रौढ़ और वृद्ध के मनः प्रवाह में आधुनिक जीवन के परिष्कार की जो योजनाएँ और वितर्कनाएँ हैं, उनमें स्वयं कवि की प्रौढ़ विचारणा प्रतिध्वनित है। मानव-जीवन की उद्दाम जिजीविषा को अध्यात्मोन्मुख का अंत में कवि अमृत्य के मृत्य-पर्यटन की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत करता है। जीवन के चरम लक्ष्य और कृताशीः मानव की हुताशनी चित्रबेला का अपूर्व उद्‌गान इस रचना में मिलेगा।

सत्यकाम

सत्यकाम प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पंत द्वारा रचित एक महाकाव्य है। पंत जी हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार स्तंभों में से एक थे। एक नये युग के प्रवर्तक के रूप में पंत जी आधुनिक हिन्दी साहित्य में उदित हुए थे।

कला और बूढ़ा चाँद

कला और बूढ़ा चाँद छायावादी युग के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत का प्रसिद्ध कविता संग्रह है। पंत जी की कविताओं में प्रकृति और कला के सौंदर्य को प्रमुखता से जगह मिली है। इस कृति के लिए पंत जी को वर्ष 1960 में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' द्वारा सम्मानित किया गया था। इस कविता संग्रह का प्रकाशन 'राजकमल प्रकाशन' द्वारा किया गया था।

बीसवीं शताब्दी के भारतीय अंतस और मानस को समझने के लिए महाकवि पंत के वृहद् रचनाकोश को जानना बहुत आवश्यक है। 'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव', 'गुंजन', 'ज्योत्स्ना', 'ग्राम्या', 'युगांत', 'उत्तरा', 'अतिमा', 'चिदंबरा' ('भारतीय ज्ञानपीठ' से सम्मानित) 'कला और बूढ़ा चाँद' ('साहित्य अकादमी' द्वारा पुरस्कृत) तथा 'लोकायतन' जैसे प्रबंध-काव्य के रचयिता सुमित्रानन्दन पंत प्रगीत प्रतिभा के पुरोगामी सर्जक तथा कला-विदग्ध कवि के रूप में व्यापक पाठक वर्ग में समादृत रहे हैं, यद्यपि उन्होंने नाटक, एकांकी, रेडियो-रूपक, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं में भी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

पंत जी की समस्त रचनाएँ भारतीय जीवन की समृद्ध सांस्कृतिक चेतना से गहन साक्षात्कार कराती हैं। उन्होंने खड़ी बोली की प्रकृति और उसके पुरुषार्थ, शक्ति और सामर्थ्य की पहचान का अभिमान ही नहीं चलाया, उसे अभिनंदित भी किया। उनके प्रकृति वर्णन में हृदयस्पर्शी तन्मयता, उर्मिल लयात्मकता और प्रकृत प्रसन्नता का विपुल भाव है।

4

स्वर्णधूलि - सुमित्रानन्दन पंत

स्वर्णधूलि सुमित्रानन्दन पंत का सातवाँ काव्य-संकलन है। इसका प्रकाशन सन् 1947 ई. में हुआ। स्वर्णधूलि में संकलित रचनाओं की संख्या 80 है। इनके अंतर्गत 'आर्षवाणी' शीर्षक से 14 रचनाएँ और पंत द्वारा 1935 ई. में अनुदित 'संन्यासी का गीत' है और अंत में 'मानसी' रूपक है। 'संन्यासी का गीत' स्वामी विवेकानन्द कृत 'सांग ऑफ द सन्न्यासिन' का रूपांतर है।

कवि-मानस की स्वर्ण चेतना

'स्वर्णधूलि' कवि-मानस की स्वर्ण चेतना का प्रतीक है, जो जड़ को चेतन के संस्पर्श से मूल्यवान बनाकर मानव के आरोहण के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। स्वर्ण नयी जीवन-चेतना की दिव्यता और महार्घता को विज्ञापित करता है। अपनी इसी भावना के अनुरूप कवि ने नये प्रतीक गढ़े हैं और अपनी भाषा-शैली को भी मांसल तथा चित्रमय बनाना चाहा है। परंतु 'पल्लव' के कवि और इन रचनाओं के कवि के बीच में बौद्धिक साधना और प्रौढ़ वर्षों का जो व्यवधान पड़ गया है, वह तिरोहित नहीं हो पाता। फिर भी जिस काव्य-भाषा का उपयोग इन उत्तर रचनाओं में मिलता है, वह प्राणवान् और भावनामय है।

रचनाएँ

'स्वर्णधूलि' की रचनाओं को कई श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं-

कथात्मक रचनाएँ

प्रथम तो वे कथात्मक या संवादात्मक रचनाएँ हैं, जिनमें पंत ने सामाजिक और नैतिक मूल्यों की सूक्ष्मता पर प्रकाश डाला है। 'पतिता' में बताया गया है कि नारी देह से कलंकित नहीं होती, मन से कलंकित होती है और प्रेम पतित को भी पावन करने में समर्थ है। कलंकित मालती को उसका पति केशव इसी सत्य के अमृत से जीवनदान देता है।

'परकीया' में हृदयस्थ सत्य को ही अंतिम वास्तविकता मान कर करुणा के परकीयत्व को लांछना से बचाने का उपक्रम है। 'ग्रामीण' में कवि पंत ने पश्चिमी रंग में रंगे श्रीधर के अंतस में सोए हुए ग्रामीण को दिखा कर, जो सहज आंतरिक श्रद्धा और सद्विश्वासों पर निर्भर है, उसे इस प्रवाद से उबारा है कि वह सूट-बूटधारी नागर मात्र है। 'सामंजस्य' में वह भाव-सत्य और वस्तु-सत्य को आत्म-सत्य के ही दो चेहरे सिद्ध करता है।

'आजाद' में मनुष्य के कर्म-स्वातंत्र्त को परिबद्ध बता कर दैवी शक्ति की महत्ता स्थापित की गयी है।

'लोकसत्य' में माधव-यादव के संवाद में मनुष्यत्व की क्षमा को जनबल से भी बड़ा कहा गया है। इस प्रकार की अन्य भी कई कथात्मक रचनाएँ इस संकलन की शोभा हैं और उनसे कवि पंत ने अपनी नयी आस्था को दृढ़ करने का काम लिया है।

चेतनावादी रचनाएँ

संकलन की रचनाओं में दूसरी कोटि चेतनावादी रचनाओं की है यद्यपि उनकी संख्या अधिक नहीं 'ज्योतिसर', 'निर्झर', 'अंतर्वाणी', 'अविच्छिन्न', 'कुण्ठित', 'आर्त्त', 'अंतर्विकास' आदि रचनाएँ इसी कोटि की हैं। इन रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ 'प्रणाम' और 'मातृचेतना' शीर्षक रचनाएँ हैं। पहली रचना से कवि के प्रेरणा-स्रोत का पता चलता है तो दूसरी रचना अरविन्द-दर्शन की स्पर्शमणि मातृचेतना को काव्योपम उपमानों में बाँधने का प्रयत्न है। दोनों रचनाएँ कवि पंत की नयी भाव-दिशा की द्योतक हैं।

प्रकृति संबंधित रचनाएँ

तीसरी कोटि की रचनाएँ प्रकृति संबंधित रचनाएँ हैं, जो कवि पंत की प्रकृति चेतना का नया संस्करण प्रस्तुत करती हैं। अंतः सलिला की भाँति

प्रकृति-प्रेम पंत की काव्यचेतना का अभिन्न अंग रहा है। इस स्वर्णसूत्र में उनका समस्त काव्य विकास ग्रंथित है। प्रत्येक नए मोड़ के साथ उन्होंने प्रकृति की ओर नई भाव मुद्रा से देखा है और नये प्रतीकों तथा शब्द सूत्रों में उसे बाँधा है। अरविंदवादी काव्य में वसंत और शरद चाँदनी और मेघ नई अध्यात्म चेतना के प्रतीक बन गये हैं। 'सावन', क्रोटन की टहनी' और 'तालकुल' जैसी नयी अभिव्यंजनाओं वाली रचनाएँ भी यहाँ मिलेंगी, जिनमें कवि दार्शनिक ऊहापोम और चिंता की मुद्रा को पीछे छोड़ कर एकदम प्रकृतिस्थ हो जाता है और कलाकार की भाँति नये परिपार्श्व से प्रकृति को छायाचित्र बना देता है।

स्वातंत्र्य का अभिनन्दन

चौथी कोटि की रचनाएँ सद्योपलब्ध स्वातंत्र्य का अभिनन्दन अथवा ध्वजवंदन हैं। संकलन की एक कविता का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा। यह कविता 'लक्ष्मण' शीर्षक है। कवि पंत के आत्मवृत्त में लक्ष्मण के प्रति उसके सतत् जाग्रत प्रशंसा-भाव का उल्लेख मिलता है और उनके सेवाधर्म को उन्होंने आदर्श माना है। इस रचना में इसी ममत्व ने वाणी पायी है।

1. स्वर्णधूलि

स्वर्ण बालुका किसने बरसा दी रे जगती के मरुथल में,
सिकता पर स्वर्णांकित कर स्वर्गिक आभा जीवन मृग जल में!
स्वर्ण रेणु मिल गई न जाने कब धरती की मर्त्य धूलि से,
चित्रित कर, भर दी रज में नव जीवन ज्वाला अमर तूलि से!
अंधकार की गुहा दिशाओं में हँस उठी ज्योति से विस्तृत,
रजत सरित सा काल बह चला फेनिल स्वर्ण क्षणों से गुंफित!
खंडित सब हो उठा अखंडित, बने अपरिचित ज्यों चिर-परिचित,
नाम रूप के भेद भर गए स्वर्ण चेतना से आलिंगित!
चक्षु वाक् मन श्रवण बन गए सूर्य अग्नि शशि दिशा परस्पर,
रूप गंध रस शब्द स्पर्श की झंकारों से पुलकित अंतर!
दैवी वीणा पुनः मानुषी वीणा बन नव स्वर में झंकृत,
आत्मा फिर से नव्य युग पुरुष को निज तप से करती सर्जित!
बीज बनें नव ज्योति वृत्तियों के जन मन में स्वर्ण धूलि कण,
पोषण करे प्ररोहों का नव अंध धरा रज का संघर्षण!

चीर आवरण भू के तम का स्वर्ण शस्य हों रश्मि अंकुरित,
मानस के स्वर्णिम पराग से धरणी के देशांतर गर्भित!

2. पतिता

रोता हाय मार कर माधव
वृद्ध पड़ोसी जो चिर परिचित,
'क्रूर, लुटेरे, हत्यारे... कर गए
बहू को, नीच, कलंकित!'
'फूटा करम! धरम भी लूटा!'
शीष हिला, रोते सब परिजन,
'हा अभागिनी! हा कलंकिनी!'
खिसक रहे गा-गा कर पुरजन!
सिसक रही सहमी कोने में
अबला साँसों की-सी ढेरी,
कोस रहीं घेरी पड़ोसिनें,
आँख चुराती घर की चेरी!
इतने में घर आता केशव,
'हा बेटा!' कर घोरतर रुदन
माँथा लेते पीट कुटुंबी,
छिन्नलता-सा कँप उठता तन!
'सब सुन चुका' चीखता केशव,
'बंद करो यह रोना धोना!
उठो मालती, लील जायेगा
तुमको घर का काला कोना!
'मन से होते मनुज कलंकित,
रज की देह सदा से कलुषित,
प्रेम पतित पावन है, तुमको
रहने दूँगा मैं न कलंकित!'

3. परकीया

विनत दृष्टि हो बोली करुणा,
आँखों में थे आँसू के घन,

'क्या जाने क्या आप कहेंगे,
मेरा परकीया का जीवन!'
स्वच्छ सरोवर-सा वह मानस,
नील शरद नभ से वे लोचन
कहते थे वह मर्म कथा जो
उमड़ रही थी उर में गोपन!
बोला विनय, 'समझ सकता हूँ,
मैं त्यक्ता का मानस क्रंदन,
मेरे लिए पंच कन्या में
षष्ट आप हैं, पातक मोचन!
यद्यपि जबाला सदृश आपको
अर्पित कर अपना यौवन धन
देना पड़ा मूल्य जीवन का
तोड़ बाह्य सामाजिक बंधन!'
'फिर भी लगता मुझे, आपने
किया पुण्य जीवन है यापन,
बतलाती यह मन की आभा,
कहता यह गरिमा का आनन!
'पति पत्नी का सदाचार भी
नहीं मात्र परिणय से पावन,
काम निरत यदि दंपति जीवन,
भोग मात्र का परिणय साधन!
'प्राणों के जीवन से ऊँचा
है समाज का जीवन निश्वय,
अंग लालसा में, समाजिक
सृजन शक्ति का होता अपचय!
'पंकिल जीवन में पंकज-सी
शोभित आप देह से ऊपर,
वही सत्य जो आप हृदय से,
शेष शून्य जग का आडंबर!
'अतः स्वकीया या परकीया

जन समाज की है परिभाषा,
काम मुक्त और प्रीति युक्त
होगी मनुष्यता, मुझको आशा!'

4. ग्रामीण

'अच्छा, अच्छा,' बोला श्रीधर
हाथ जोड़ कर, हो मर्माहत,
'तुम शिक्षित, मैं मूर्ख ही सही,
व्यर्थ बहस, तुम ठीक, मैं गलत!
'तुम पश्चिम के रंग में रँगे,
मैं हूँ दकियानूसी भारत,'
हँसा ठहाका मार मनोहर,
'तुम और कट्टर पंथी? लानत!'
'सूट बूट में सजे धजे तुम
डाल गले फाँसी का फंदा,
तुम्हें कहे जो भारतीय, वह
है दो आँखोंवाला अंधा!
'अपनी अपनी दृष्टि है,' तुरत
दिया क्षुब्ध श्रीधर ने उत्तर,
'भारतीय ही नहीं, बल्कि मैं
हूँ ग्रामीण हृदय के भीतर!
'धोती कुरते चादर में भी
नई रोशनी के तुम नागर,
मैं बाहर की तड़क भड़क में
चमकीली गंगा जल गागर!'
'यह सच है कि,' मनोहर बोला,
'तुम उथले पानी के डाभर,
मुझको चाहे नागर कह लो
या खारे पानी का सागर!'
'तुमने केवल अधनंगे
भारत का गँवई तन देखा है,

श्रीधर संयत स्वर में बोला,
मैंने उसका मन देखा है!'
'भारतीय भूसा पिंजर में
तुम हो मुखर पश्चिमी तोते
नागरिकों के दुराग्रहों
तर्कों वादों के पंडित थोथे!
'मैं मन से ग्रामों का वासी
जो मृग तृष्णाओं से ऊपर
सहज आंतरिक श्रद्धा से
सद् विश्वासों पर रहते निर्भर!
'जो अदृश्य विश्वास सरणि से
करते जीवन सत्य को ग्रहण,
जो न त्रिशंकु सदृश लटके हैं,
भू पर जिनके गड़े हैं चरण!
'उस श्रद्धा विश्वास सूत्र में
बँधा हुआ मैं उनका सहचर
भारत की मिट्टी में बोए
जो प्रकाश के बीज हैं अमर!'

5. सामंजस्य

भाव सत्य बोली मुख मटका
'तुम - मैं की सीमा है बंधन,
मुझे सुहाता बादल-सा नभ में
मिल जाना, खो अपनापन!
ये पार्थिव संकीर्ण हृदय हैं,
मोल तोल ही इनका जीवन,
नहीं देखते एक धरा है,
एक गगन है, एक सभी जन!'
बोली वस्तु सत्य मुँह बिचका,
'मुझे नहीं भाता यह दर्शन,
भिन्न देह हैं जहाँ, भिन्न रुचि,

भिन्न स्वभाव, भिन्न सब के मन!
नहीं एक में भरे सभी गुण
द्वन्द्व जगत में है नारी-नर,
स्नेही द्रोही, मूर्ख चतुर हैं,
दीन धनी, कुरूप और सुन्दर!
आत्म सत्य बोली मुस्का कर,
'मुझे ज्ञात दोनों का कारण,
मैं दोनों को नहीं भूलती,
दोनों का करती संचालन!'
पंख खोल सपने उड़ जाते,
सत्य न बढ़ पाता गिन-गिन पग,
सामंजस्य न यदि दोनों में
रखती मैं, क्या चल सकता जग?

6. आजाद

पैगंबर के एक शिष्य ने
पूछा, 'हजरत बंदे को शक
है आजाद कहाँ तक इंसाँ
दुनिया में पाबंद कहाँ तक?'
'खड़े रहो' बोले रसूल तब,
'अच्छा, पैर उठाओ ऊपर,'
'जैसा हुक्म!' मुरीद सामने
खड़ा हो गया एक पैर पर!
'ठीक, दूसरा पैर उठाओ'
बोले हँसकर नबी फिर तुरत,
बार बार गिर, कहा शिष्य ने
'यह तो नामुमकिन है हजरत!'
'हो आजाद यहाँ तक, कहता
तुमसे एक पैर उठ ऊपर,
बँधे हुए दुनिया से कहता

पैर दूसरा अड़ा जमीं पर!'--
पैगंबर का था यह उत्तर!

7. लोक सत्य

बोला माधव,
'प्यारे यादव
जब तक होंगे लोग नहीं अपने सत्वों से परिचित
जन संग्रह बल पर भव संकृति हो न सकेगी निर्मित!
आज अल्प हैं जीवित जग में और असत्य उत्पीड़ित
लौह मुष्टि से हमें छीननी होगी सत्ता निश्चित!'
बोला यादव
'प्यारे माधव
मुझको लगता आज वृत्त में घूम रहा मानव मन,
भौतिकता के आकर्षण से रण जर्जर जग जीवन!
समतल व्यापी दृष्टि मनुज की देख न पाती ऊपर,
देख न पाती भीतर अपने, युग स्थितियों से बाहर!
नहीं दीखता मुझे जनों का भूत भ्रांति में मंगल
वाह्य क्रांति से प्रबल हृदय में क्रांति चल रही प्रतिपल!
मध्य वर्ग की वैभव तंद्रा के स्वप्नों से जग कर
अभिनव लोक सत्य को हमको स्थापित करना भू पर!
युग-युग के जीवन से और युग जीवन से उत्सर्जित
सूक्ष्म चेतना में मनुष्य की, सत्य हो रहा विकसित!
आज मनुज को ऊपर उठ और भीतर से हो विस्तृत
नव्य चेतना से जग जीवन को करना है दीपित!'
बोला यादव
'प्यारे माधव,
वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन
भूतवाद हो जिसका रज तन प्राणिवाद जिसका मन
और अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गभीर चिरंतन
जिसमें मूल सृजन विकास के विश्व प्रगति के गोपन!
आज हमें मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख,

मनुष्यत्व में मज्जित करने युग जीवन के सुख-दुख!
पिघला देगी लौह मुष्टि को आत्मा की कोमलता
जन बल से रे कहीं बड़ी है मनुष्यत्व की क्षमता!

8. स्वप्न निर्बल

'तुम निर्बल हो, सबसे निर्बल!'
बोला माधव!
'मैं निर्बल हूँ और युग के निर्बल का संबल,'
बोला यादव,
यह युग की चेतना आज जो मुझमें बहती,
बुद्धिमना अति प्राण मना यह सब कुछ सहती!
एक ओर युग का वैभव है एक ओर युग तृष्णा,
एक ओर युग दु:शासन, और एक ओर युग कृष्णा!
देहमना मानव मुरझाता,
आत्म मना मानव दुख पाता
इस युग में प्राणों का जीवन
बहता जाता, बहता जाता!'
क्या है यह प्राणों का जीवन?
कैसा यह युग दर्शन?
बोला माधव
प्रिय यादव
यह भेद बताओ गोपन
'यह जीवनी शक्ति का सागर
उद्वेलित जो प्रतिक्षण,
जिसको युग चेतना सदा से
करती आई मंथन!'
बोला यादव,
प्रिय माधव
कर शंभु चाप का भंजन
किया राम ने मुक्त
जीर्ण आदर्शों से जग जीवन!

युग चेतना राम बन कर फिर
नवयुग परिवर्तन में
मध्य युगों की नैतिक असि
खंडित करती जन मन में!
यह संकीर्ण नीतिमत्ता है
ज्यों असि धारा का पथ,
आज नहीं चल सकता इसपर
भव मानवता का रथ।
जिसको तुम दुर्बलता कहते
युग प्राणों का कंपन,
मुक्त हो रही विश्व चेतना
तोड़ युगों के बंधन!'
'प्यारे माधव,'
बोला यादव,
हम दुर्बल हैं यह सच है
पर युग जीवन में दुर्बल
सूक्ष्म शरीरी स्वप्न आज के
होंगे कल के संबल!'

9. गणपति उत्सव

कितना रूप राग रंग
कुसुमित जीवन उमंग!
अर्ध्य सभ्य भी जग में
मिलती है प्रति पग में!
श्री गणपति का उत्सव,
नारी-नर का मधुरव!
श्रद्धा विश्वास का
आशा उल्लास का
दृश्य एक अभिनव!
युवक नव युवती सुघर
नयनों से रहे निखर

हाव भाव सुरुचि चाव
स्वाभिमान अपनाव
संयम संभ्रम के कर!
कुसमय! विप्लव का डर!
आवे यदि जो अवसर
तो कोई हो तत्पर
कह सकेगा वचन प्रीत,
'मारो मत मृत्यु भीत,
पशु हैं रहते लड़कर!
मानव जीवन पुनीत,
मृत्यु नहीं हार जीत,
रहना सब को भू पर!'
कह सकेगा साहस भर
देह का नहीं यह रण,
मन का यह संघर्षण!
'आओ, स्थितियों से लड़ें
साथ-साथ आगे बढ़ें
भेद मिटेंगे निश्चय
एक्य की होगी जय!
'जीवन का यह विकास,
आ रहे मनुज पास!
उठता उर से रव है,--
एक हम मानव हैं
भिन्न हम दानव हैं!'

10. आशंका

यदि जीवन संग्राम
नाम जीवन का,
अमृत और विष ही परिणाम
उदधि मंथन का
सृजन प्रथा तब प्रगति विकास नहीं है

बुद्धि और परिणति ही कथा सही है!
नित्य पूर्ण यह विश्व चिरंतन
पूर्ण चराचर, मानव तन मन,
अंतर्बाह्य पूर्ण चिर पावन!
केवल जीव वृद्धि पाते हैं,
वे परिणत होते जाते हैं,
जीवन क्षण, जीवन के युग,
जीवन की स्थितियाँ
परिवर्तित परिवर्धित होकर
भव इतिहास कहाते हैं!
छाया प्रकाश दोनों मिलकर
जीवन को पूर्ण बनाते हैं!
यदि ऐसा संग्राम
नाम जीवन का,
अमृत और विष ही परिणाम
उदधि मंथन का
तब परिणति ही है इतिहास सृजन का,
क्रम विकास अध्यास मात्र रे मन का!

11. जन्म भूमि

जननी जन्मभूमि प्रिय अपनी, जो स्वर्गादपि चिर गरीयसी!
जिसका गौरव भाल हिमाचल
स्वर्ण धरा हँसती चिर श्यामल
ज्योति मथित गंगा यमुना जल,
बह जन-जन के हृदय में बसी!
जिसे राम लक्ष्मण और सीता
सजा गए पद धूलि पुनीता,
जहाँ कृष्ण ने गाई गीता
बजा अमर प्राणों में वंशी!
सीता सावित्री-सी नारी
उतरीं आभा देही प्यारी,

शिला बनी तापस सुकुमारी
जड़ता बनी चेतना सरसी!
शांति निकेतन जहाँ तपोवन
ध्यानावस्थित हो ऋषि मुनि गण
चिद् नभ में करते थे विचरण,
यहाँ सत्य की किरणें बरसीं!
आज युद्ध पीड़ित जग जीवन
पुनः करेगा मंत्रोच्चारण
वह वसुधैव जहाँ कुटुम्बकम्
उस मुख पर प्रीति विलसी!
जननी जन्मभूमि प्रिय अपनी, जो स्वर्गादपि चिर गरीयसी!

12. युगागम

आज से युगों का सगुण
विगत सभ्यता का गुण,
जन-जन में, मन-मन में
हो रहा नव विकसित,
नव्य चेतना सर्जित!
आ रहा भव-नूतन
जानता जग का मन
स्वर्ण हास्य मय नूतन
भावी मानव जीवन,
आनता अंतर्मन!
जा रहा पुराचीन
तर्जन कर गर्जन कर
आ रहा चिर नवीन
वर्षण कर, सर्जन कर!
तमस का घन अपार,
सूखी सृष्टि वृष्टि धार,
गरजता,--अहंकार
हृदय भार!

हे अभिनव, भू पर उतर,
रज के तम को छू कर
स्वर्ण हास्य से भर दो,
भू मन को कर भास्वर!
सृजन करो नव जीवन,
नव कर्म, वचन, मन!

13. काले बादल

सुनता हूँ, मैंने भी देखा,
काले बादल में रहती चाँदी की रेखा!
काले बादल जाति द्वेष के,
काले बादल विश्व क्लेश के,
काले बादल उठते पथ पर
नव स्वतंत्रता के प्रवेश के!
सुनता आया हूँ, है देखा,
काले बादल में हँसती चाँदी की रेखा!
आज दिशा हैं घोर अँधेरी
नभ में गरज रही रण भेरी,
चमक रही चपला क्षण-क्षण पर
झनक रही झिल्ली झन-झन कर!
नाच-नाच आँगन में गाते केकी-केका
काले बादल में लहरी चाँदी की रेखा।
काले बादल, काले बादल,
मन भय से हो उठता चंचल!
कौन हृदय में कहता पल-पल
मृत्यु आ रही साजे दलबल!
आग लग रही, घात चल रहे, विधि का लेखा!
काले बादल में छिपती चाँदी की रेखा!
मुझे मृत्यु की भीति नहीं है,
पर अनीति से प्रीति नहीं है,
यह मनुजोचित् रीति नहीं है,

जन में प्रीति प्रतीति नहीं है!
देश जातियों का कब होगा,
नव मानवता में रे एका,
काले बादल में कल की,
सोने की रेखा!

14. जाति मन

सौ-सौ बाँहें लड़ती हैं, तुम नहीं लड़ रहे,
सौ-सौ देहें कटती हैं, तुम नहीं कट रहे,
हे चिर मृत, चिर जीवित भू जन!
अंध रूढ़िएँ अड़ती हैं, तुम नहीं अड़ रहे,
सूखी टहनी छँटती हैं, तुम नहीं छँट रहे,
जीवन्मृत नव जीवित भू जन!
जाने से पहिले ही तुम आ गए यहाँ
इस स्वर्ण धरा पर,
मरने से पहिले तुमने नव जन्म ले लिया,
धन्य तुम्हें हे भावी के नारी नर!
काट रहे तुम अंधकार को,
छाँट रहे मृत आदर्शों को
नव्य चेतना में डुबा रहे,
युग मानव के संघर्षों को!
मुक्त कर रहे भूत योनि से
भावी के स्वर्णिम वर्षों को
हाँक रहे तुम जीवन रथ, नव मानव बन,
पथ में बरसा, शत आशाओं को,
शत हर्षों को!
सौ-सौ बाँहें सौ-सौ देहें नहीं कट रहीं,
बलि के अज, तुम आज कट रहे,
युग युग के वैषम्य, जाति मन,
एवमस्तु बहिरंतर जो तुम
आज छँट रहे!

15. क्षण जीवी

रक्त के प्यासे, रक्त के प्यासे!
सत्य छीनते ये अबला से
बच्चों को मारते, बला से!
रक्त के प्यासे!
भूत प्रेत ये मनो भूमि के
सदियों से पाले पोसे
अँधियाली लालसा गुहा में
अंध रूढ़ियों के शोषे!
मरने और मारने आए
मिटते नहीं एक दो से
ये विनाश के सृजन दूत हैं
इनको कोई क्या कोसे!
रक्त के प्यासे!
यह जड़त्व है मन की रज का
जो कि मृत्यु से ही जाता
धीरे-धीरे-धीरे जीवन
इसको कहीं बदल पाता!
ऊर्ध्व मनुज ये नहीं, अधोमुख,
उलटे जिनके जीवन मान,
अंधकार खींचता इन्हें है
गाता रुधिर प्रलय के गान!
रक्त के प्यासे!
हृदय नहीं ये देह लूटते हैं अबला से,
जाति-पाँति से रहित दुधमुहे
बच्चों को मारते, बला से!
रक्त के प्यासे!
ऊर्ध्व मनुज बनना महान है
वे प्रकाश की है संतान
ऊर्ध्व मनुज बनना महान है
करना उन्हें आत्म निर्माण!

उन्हें अनादि अनंत सत्य का
करना है आदान-प्रदान
धर प्रतीति ज्वाला हाथों में
करना जीवन का सम्मान!
उन्हें प्रेम को सत्य, ज्योति को
शलभ समर्पित करने प्राण,
धुल जावें धरती के धब्बे
इनके प्राणों की बरसा से!
सत्य के प्यासे!

16. मनुष्यत्व

छोड़ नहीं सकते रे यदि जन
जाति वर्ग और धर्म के लिए रक्त बहाना
बर्बरता को संस्कृति का बाना पहनाना–
तो अच्छा हो छोड़ दें अगर
हम हिन्दू-मुस्लिम और ईसाई कहलाना!
मानव होकर रहें धरा पर
जाति वर्ण धर्मों से ऊपर
व्यापक मनुष्यत्व में बँधकर!
नहीं छोड़ सकते रे यदि जन
देश राष्ट्र राज्यों के हित नित युद्ध कराना
हरित जनाकुल धरती पर विनाश बरसाना–
तो अच्छा हो छोड़ दें अगर
हम अमरीकन रूसी और इंग्लिश कहलाना!
देशों से आए धरा निखर,
पृथ्वी हो सब मनुजों की घर
हम उसकी संतान बराबर!
छोड़ नहीं सकते हैं यदि जन
नारी मोह, पुरुष की दासी उसे बनाना,
देह द्वेष और काम क्लेश के दृश्य दिखाना–
तो अच्छा हो छोड़ दें अगर

हम समाज में द्वन्द्व स्त्री-पुरुष में बँट जाना!
स्नेह मुक्त सब रहें परस्पर
नारी हो स्वतंत्र जैसे नर
देव द्वार हो मातृ कलेवर!

17. चौथी भूख

भूखे भजन न होई गुपाला,
यह कबीर के पद की टेक,
देह की है भूख एक!–
कामिनी की चाह, मन्मथ दाह,
तन को हैं तपाते
और लुभाते विषय भोग अनेक
चाहते ऐश्वर्य सुख जन
चाहते स्त्री पुत्र और धन,
चाहते चिर प्रणय का अभिषेक!
देह की है भूख एक!
दूसरी रे भूख मन की!
चाहता मन आत्म गौरव
चाहता मन कीर्ति सौरभ
ज्ञान मंथन नीति दर्शन,
मान पद अधिकार पूजन!
मन कला विज्ञान द्वारा
खोलता नित ग्रंथियाँ जीवन मरण की!
दूसरी यह भूख मन की!
तीसरी रे भूख आत्मा की गहन!
इंद्रियों की देह से ज्यों है परे मन
मनो जग से परे त्यों आत्मा चिरंतन
जहाँ मुक्ति विराजती
और डूब जाता हृदय क्रंदन!
वहाँ सत् का वास रहता,
चहाँ चित् का लास रहता,

वहाँ चिर उल्लास रहता
यह बताता योग दर्शन!
किंतु ऊपर हो कि भीतर
मनो गोचर या अगोचर
क्या नहीं कोई कहीं ऐसा अमृत धन
जो धरा पर बरस भरदे भव्य जीवन?
जाति वर्गों से निखर जन
अमर प्रीति प्रतीति में बँध
पुण्य जीवन करें यापन,
और धरा हो ज्योति पावन!

18. नरक में स्वर्ग

(1)
गत युग के जन पशु जीवन का जीता खँडहर
वह छोटा-सा राज्य नरक था इस पृथ्वी पर।
कीड़ों से रेंगते अपाहिज थे नारी नर
मूल्य नहीं था जीवन का कानी कौड़ी भर!
उसे देख युग युग का मन कर उठता क्रंदन
हाय विधाता, यह मानव जीवन संघर्षण!!
जग के चिर परिताप वहाँ करते थे कटु रण,
वह नृशंसता, द्वेष कलह का था जड़ प्रांगण।
झाड़-फूस के भग्न घरोंदों में लहराकर
हरी-भरी गाँवों की धरती उठ ज्यों ऊपर।
राज भवन के उच्च शिखर से उठा शास्ति कर
इंगित करती थी अलक्ष्य की ओर निरंतर।
उस अलक्ष्य में युग भविष्य जो था अंतर्हित
वह यथार्थ था जितना मन में उतना कल्पित।
बाहर से थी राय प्रजा हो रही संगठित,
भीतर से नव मनुष्यत्व गोपन में विकसित।
(2)
राज महल के पास एक मिट्टी के कच्चे घर में
रहती थी मालिन की लड़की क्षुधा विदित पुर भर में।

मौन कुई-सी खिली गाँव के ज्यों निशीथ पोखर में
वह शशि मुखी सुधा की थी सहचरी हर्ग्य अंबर में।
नव युवती थी फूलों के मृदु स्पर्शों से पोषित तन,
सहज बोध के सलज वृत्त पर विकसित सौरभ का मन।
मुग्ध कली वह जग मादन वसंत था उसका यौवन,
भावों की पंखड़ियों पर रंजित निसर्ग सम्मोहन।
उसके आँगन में आ उषा स्वर्ण हास बरसाती,
राजकुमारी सुधा द्वार पर खड़ी नित्य मुस्काती
दोनों सखियाँ उपवन में जा फूलों में मिल जातीं
इन्द्र चाप के रंगों में ज्यों इन्दु रश्मि रिल जातीं।
कोमल हृदय सुधाका था चिर विरह गरल से तापित
जननि जनक की इच्छा से थी प्रणय भावना शासित।
फूलों का तन मधुर क्षुधा का मधुप प्रीति से शोषित,
राजकुमार अजित की थी वह स्वप्न संगिनी अविजित।
पंकजिनी थी क्षुधा, पंक में खिली दैन्य के निश्वय,
स्वर्ण किरण थी सुधा धरा की रज पर उतरी सहृदय।
दोनों के प्राणों का परिणय था जन के हित सुखमय,
स्वर्ग धरा का मधुर मिलन हो ज्यों स्रष्टा का आशय।
दोनों सखियाँ मिल गोपन में करतीं मर्म निवेदन,
दोनों की दयनीय दशा बन गई स्नेह दृढ़ बंधन!
जीवन के स्वप्नों का जीवन की स्थितियों से आ रण,
तन मन की था क्षुधा बढ़ाता ईंधन बन नव यौवन!
कितने ऐसे युवती-युवक हैं आज नहीं जो कुंठित,
जिनकी आशा अभिलाषा सुख स्वप्न नहीं भू लुंठित।
भीतर बाहर में विरोध जब बढ़ता है अनापेक्षित
तब युग का संचरण प्रगति देता जीवन को निश्चित!

(3)

राजभवन हे राजभवन, जन-मन के मोहन,
युग-युग के इतिहास रहे तुम भू के जीवन!
संस्कृति कला विभव के स्वप्नों से तुम शोभन
पृथ्वी पर थे स्वर्गिक शोभा के नंदनवन!

मदिर लोचनों से गवाक्ष थे मुग्ध कुवलयित,
मधुर नूपुरों की कलध्वनि से दिशि पल गुंजित।
नव वसंत के तुम शाश्वत विलास थे कुसुमित
भू-मंडल की विद्या के प्रकाश से ज्योतित।
हाय, आज किन तापों शापों से तुम पीड़ित
विस्फोटक बन गए धरा के उर के निन्दित।
जन गण के जीवन से तुम न रहे संबंधित
अहम्मभयत्ता, धन मद, मति जड़ता में मज्जित।
अब भी चाहो पा सकते तुम जन-मन पूजन
जन मंगल के लिए करो जो विभव समर्पण!
जन सेवा व्रत के चिर ब्रती रहो तुम दृढ़पण,
संस्कृति ज्ञान कला का करना सीखो पोषण!
तंत्र मात्र से हो सकते न मनुज परिचालित
उनके पीछे जब तक हो न चेतना विकसित।
प्रजा तंत्र के साथ राज्य रह सकते जीवित
जन जीवन विकास के नियमों से अनुशासित!

(4)

इन्कलाब के तुमल सिन्धु-सा एक रोज हो उठा तरंगित
वह छोटा-सा राज्य क्रुद्ध जनता के आवेशों से नादित।
थी अग्रणी क्षुधा के कर में रक्त ध्वजा ज्वाला-सी कंपित,
काल पड़ा था, क्षुब्ध प्रजा को था लगान भरना अस्वीकृत।
बल प्रयोग था किया राज्य ने जनमत का कर प्रजा संगठन
राजभवन को घेर अड़ी थी, सत्वों के हित देने जीवन।
हाथ क्षुधा का पकड़े था श्रम उसका प्रिय साथी, प्रेमी जन
द्वेष शिखा का शलभ अजित था देख रहा उनको सरोष मन।
देख रही थी क्षुधा खोल किंचित् अंत:पुर का वातायन
उसे विदित था सोदर के मन में जो था चल रहा इधर रण।
दोनों सखियों के नयनों ने मिलकर मौन किया संभाषण
दोनों के उर में था आकुल स्पंदन आँखों में आँसू बन!
हार गए थे भूप मनाकर, बात प्रजा ने एक न मानी
सह सकती थी, सच है, जनता और न शासन की मनमानी।

छोड़ भार युवराज पर सकल थे निश्चिंत नृपति अभिमानी
कुपित अजित ने जन विद्रोह दमन करने की मन में ठानी।
पा उसका संकेत सैनिकों ने, जो रहे सशस्त्र घेर कर
अग्नि वृष्टि कर दी जनगण थे मृत्यु कांड के लिए न तत्पर।
प्रबल प्रभंजन से सगर्व ज्यों आलोड़ित हो उठता सागर
क्रंदन गर्जन की हिल्लोलें उठने गिरने लगीं धरा पर!
खिन्न धरित्री पीती थी निज रस से पोषित मानव शोणित
पृष्ठ द्वार से निकल सुधा हो गई भीड़ में उधर तिरोहित।
लाल ध्वजा को लक्ष्य बना निज इधर अजित ने हो उत्तेजित
मृत्यु व्याल दी उगल क्षुधा पर प्रीति बन गई द्वेष की तड़ित।
'हाय, सुधा! हा, राजकुमारी!' दशों दिशा हो उठी ज्यों ध्वनित,
'सुधे, सखी, प्राणों की प्यारी! वज्र गिरा यह हम पर निश्चित!'
'ओ जन मानस राज हंसिनी तुमने प्राण दिए जनगण हित,
वैभव की तज तेज हाय तुम धरा धूलि पर आज चिर शयित!!!
हलचल क्रंदन कोलाहल से राजमहल हिल उठा अचानक!
देखा सबने क्षुधा अंक में राजकुमारी सोई अपलक!
अश्रु अजस्र क्षुधा के उसको पहनाते थे स्नेह विजय स्रक्,
उसने ली थी छीन सखी से रक्त जिह्वध्वज मृत्यु भयानक!
रोते थे नरेश विस्मृत से, रानी पास खड़ी थी मूर्छित,
किंकर्त्तव्य विमूढ़ खड़ा था अजित अवाक् शून्य जीवन्मृत।
नत मस्तक थे नृप, घुटनों बल प्रजा प्रणत थी उभय पराजित,
प्रीति प्रताड़ित हृदय सुधा का था निष्पंद प्रजा को अर्पित।
देख अजित को आत्मघात के हित उद्यत विदीर्ण दुखकातर
झपट क्षुधा से छीन लिया द्रुत शस्त्र हाथ से कह धिक् कायर!
साश्रु नयन उस क्षुब्ध युवक के मुख से निकले सुधा सिक्त स्वर
'सुधा आज से बहिन क्षुधा तुम, अजित विजित, जनगण का अनुचर!
कथा मात्र है यह कल्पित उपचेतन से अतिरंजित,
कहीं नहीं है राजकुमारी सुधा धरा पर जीवित।
मनुजोचित विधि से न सभ्यता आज हो रही निर्मित,
संस्कृत रे हम नाम मात्र को, विजयी हममें प्राकृत।
आज सुधा है, शोषित श्रम है, नग्न प्रजा तम पीड़ित,

प्रीति रहित है अजित काम, कामना न किंचित् विकसित।
अभी नहीं चेतन मानव से भू जीवन मर्यादित,
अभी प्रकृति की तमस शक्ति से मनुज नियति अनुशासित।

19. भावोन्मेष

पुष्प वृष्टि हो,
नव जीवन सौन्दर्य सृष्टि हो,
जो प्रकाश वर्षिणी दृष्टि हो!
लहरों पर लोटें नव लहरें
लाड़ प्यार की पागलपन की
नव जीवन की, नव यौवन की!
मोती की फुहार-सी छहरें
प्राणों के सुख की, भावों की,
सहज सुरुचि की चित चावों की!
इन्द्रधनुष-सी आभा फहरे
स्वप्नों की, सौन्दर्य सृजन की,
आशा की, नव प्रणय मिलन की!
लहरों पर लोटें नव लहरें!
कूक उठे प्राणों में कोयल!
नव्य मंजरित हो जन जीवन,
नवल पल्लवित जग के दिशि क्षण,
नव कुसुमित मानव के तन मन!
बहे मलय साँसों में चंचल!
जीवन के बंधन खुल जाएँ
मनुजों के तन मन धुल जाएँ,
जन आदर्शों पर तुल जाएँ,
खिले धरा पर जीवन शतदल
कूक उठे फिर कोयल!
युग प्रभात हो अभिनव!
सत्य निखिल बन जाये कल्पना,
मिथ्या जग की मिटे जल्पना,

कला धरा पर रचे अल्पना,
रुके युगों का जन रव!
प्रीति प्रतीति भरे हों अंतर
विनय स्नेह सहृदयता के सर,
जीवन स्वप्नों से दृग सुन्दर,
सब कुछ हो फिर संभव।
जाति-पाँति की कड़ियाँ टूटें
मोह द्रोह मद मत्सर छूटें
जीवन के नव निर्झर फूटें
वैभव बने पराभव
युग प्रभात हो अभिनव!

20. अंतिम पैगम्बर

दूर-दूर तक केवल सिकता, मृत्यु नास्ति सूनापन!–
जहाँ हिंस बर्बर अरबों का रण जर्जर था जीवन!
उष्मा झंझा बरसाते थे अग्नि बालुका के कण,
उस मरुस्थल में आप ज्योति निर्झर से उतरे पावन!
वर्ग जातियों में विभक्त बद्दू और शेख निरंतर
रक्तधार से रँगते रहते थे रेती कट मर कर!
मद अधीर ऊँटों की गति से प्रेरित प्रिय छंदों पर
गीत गुनगुनाते थे जन निर्जन को स्वप्नों से भर!
वहाँ उच्च कुल में जन्मे तुम दीन कुरेशी के घर
बने गड़रिए, तुम्हें जान प्रभु, भेड़ नवाती थी सर!
हँस उठती थी हरित दूब मरु में प्रिय पदतल छूकर
प्रथित खादिजा के स्वामी तुम बने तरुण चिर सुंदर!
छोड़ विभव घर द्वार एक दिन अति उद्वेलित अंतर
हिरा शैल पर चले गए तुम प्रभु की आज्ञा सिर धर
दिव्य प्रेरणा से निःसृत हो जहाँ ज्योति विगलित स्वर
जगी ईश वाणी कुरान चिर तपन पूत उर भीतर!
घेर तीन सौ साठ बुतों से काबा को, प्रति वत्सर
भेज कारवाँ, करते थे व्यापार कुरेश धनेश्वर

उस मक्का की जन्मभूमि में, निर्वासित भी होकर
किया प्रतिष्ठित फिर से तुमने अब्राहम का ईश्वर!
ज्योति शब्द विधुत् असि लेकर तुम अंतिम पैगम्बर
ईश्वरीय जन सत्ता स्थापित करने आए भू पर!
नबी, दूरदर्शी शासक नीतिज्ञ सैन्य नायक वर
धर्म केतु, विश्वास हेतु तुम पर जन हुए निछावर!
अल्ला एक मात्र है ईश्वर और रसूल मोहम्मद'
घोषित तुमने किया तड़ित असि चमका मिटा अहम्मद!
ईश्वर पर विश्वास प्रार्थना दासकृसंत की संपद,
शाति धाम इस्लाम जीव प्रति प्रेम स्वर्ग जीवन नद।
जाति व्यर्थ हैं सब समान हैं मनुज, ईश के अनुचर,
अविश्वास और वर्ग भेद से है जिहाद श्रेयस्कर!
दुर्बल मानव, पर रहीम ईश्वर चिर करुणा सागर,
ईश्वरीय एकता चाहता है इस्लाम धरा पर!
प्रकृति जीव ही को जीवन की मान इकाई निश्वित
प्राणों का विश्वास पंथ कर तुमने पभु का निर्मित।
व्यक्ति चेतना के बदले कर जाति चेतना विकसित
जीवन सुख का स्वर्ग किया अंतरतम नभ में स्थापित।
आत्मा का विश्लेषण कर या दर्शन का संश्लेषण,
भाव बुद्धि के सोपानों में बिलमाए न हृदय मन।
कर्म प्रेरणा स्फुरित शब्द से जन-मन का कर शासन
ऊर्ध्व गमन के बदले समतल गमन बताया साधन!
स्वर्ग दूत जबरील तुम्हारा बन मानस पथ-दर्शक
तुम्हें सुझाता रहा मार्ग जन मंगल का निष्कंटक।
तर्कों वादों और बुतों के दासों को, जन रक्षक
प्राणों का जीवन पथ तुमने दिखलाया आकर्षक!
एक रात में मृत मरु को कर तुमने जीवन चेतन
पृथ्वी को ही प्रभु के शब्दों को कर दिया समर्पण।
'मैं भी अन्य जनों सा हूँ!' कह रह सबसे साधारण
पावन तुम कर गए धरा को, धर्म तंत्र कर रोपण।

21. छायाभा

छाया प्रकाश जन जीवन का
बन जाता मधुर स्वप्न संगीत
इस घने कुहासे के भीतर
दिप जाते तारे इन्दु पीत।
देखते-देखते आ जाता,
मन पा जाता,
कुछ जग के जगमग रुप नाम
रहते रहते कुछ छा जाता,
उर को भाता
जीवन सौन्दर्य अमर ललाम!
प्रिय यहाँ प्रीति
स्वप्नों में उर बाँधे रहती,
स्वर्णिम प्रतीति
हँस-हँस कर सब सुख दुख सहती।
अनिवार कामना
नित अबाध अमना बहती,
चिर आराधना
विपद में बाँह सदा गहती।
जड़ रीति नीतियाँ
जो युग कथा विविध कहतीं,
भीतियाँ
जागते सोते तन मन को दहतीं।
क्या नहीं यहाँ? छाया प्रकाश की संसृति में!
नित जीवन मरण बिछुड़ते मिलते भव गति में!
ज्ञानी ध्यानी कहते, प्रकाश, शाश्वत प्रकाश,
अज्ञानी मानी छाया माया का विलास!
यदि छाया यह किसकी छाया?
आभा छाया जग क्यों आया?
मुझको लगता
मन में जगता,

यह छायाभा है अविच्छिन्न,
यह आँखमिचौनी चिर सुंदर
सुख दुख के इन्द्रधनुष रंगों की
स्वप्न सृष्टि अज्ञेय, अमर!

22. दिवा स्वप्न

मेघों की गुरु गुहा सा गगन
वाष्प बिन्दु का सिंधु समीरण!
विद्युत् नयनों को कर विस्मित
स्वर्ण रेख करती हँस अंकित
हल्की जल फुहार, तन पुलकित
स्मृतियों से स्पंदित मन
हँसते रुद्र मरुतगण!
जग, गंधर्व लोक सा सुंदर
जन विद्याधर यक्ष कि किन्नर,
चपला सुर अंगना नृत्यपर–
छाया का प्रकाश घन से छन
स्वप्न सृजन करता घन!
ऐसा छाया बादल का जग
हर लेता मन, सहज क्षण सुभग!
भाव प्रभाव उसे देते रँग!
उर में हँसते इन्द्र धनुष क्षण,
सृजन शील यह सावन!

23. सावन

झम झम झम झम मेघ बरसते हैं सावन के
छम छम छम गिरतीं बूँदें तरुओं से छन के।
चम चम बिजली चमक रही रे उर में घन के,
थम-थम दिन के तम में सपने जगते मन के।
ऐसे पागल बादल बरसे नहीं धरा पर,
जल फुहार बौछारें धारें गिरतीं झर झर।

आँधी हर-हर करती, दल मर्मर तरु
दिन रजनी औ पाख बिना तारे शशि दिनकर।
पंखों से रे, फैले-फैले ताड़ों के दल,
लंबी-लंबी अंगुलियाँ हैं चौड़े करतल।
तड़-तड़ पड़ती धार वारि की उन पर चंचल
टप-टप झरतीं कर मुख से जल बूँदें झलमल।
नाच रहे पागल हो ताली दे दे चल दल,
झूम-झूम सिर नीम हिलातीं सुख से विह्वल।
हरसिंगार झरते, बेला कलि बढ़ती पल-पल
हँसमुख हरियाली में खग कुल गाते मंगल?
दादुर टर-टर करते, झिल्ली बजती झन-झन
म्याँउ-म्याँउ रे मोर, पीउ-पिउ चातक के गण!
उड़ते सोन बलाक आर्द्र सुख से कर क्रंदन,
घुमड़-घुमड़ घिर मेघ गगन में करते गर्जन।
वर्षा के प्रिय स्वर उर में बुनते सम्मोहन
प्रणयातुर शत कीट विहग करते सुख गायन।
मेघों का कोमल तम श्यामल तरुओं से छन।
मन में भू की अलस लालसा भरता गोपन।
रिमझिम-रिमझिम क्या कुछ कहते बूँदों के स्वर,
रोम सिहर उठते छूते वे भीतर अंतर!
धाराओं पर धाराएँ झरतीं धरती पर,
रज के कण-कण में तृण-तृण की पुलकावलि भर।
पकड़ वारि की धार झूलता है मेरा मन,
आओ रे सब मुझे घेर कर गाओ सावन!
इन्द्रधनुष के झूले में झूलें मिल सब जन,
फिर फिर आए जीवन में सावन मन भावन!

24. आह्वान

बरसो हे घन!
निष्फल है यह नीरव गर्जन,
चंचल विद्युत् प्रतिभा के क्षण

बरसो उर्वर जीवन के कण
हास अश्रु की झड़ से धो दो
मेरा मनो विषाद गगन!
बरसो हे घन!
हँसू कि रोऊँ नहीं जानता,
मन कुछ माने नहीं मानता,
मैं जीवन हठ नहीं ठानता,
होती जो श्रद्धा न गहन,
बरसो हे घन!
शशि मुख प्राणित नील गगन था
भीतर से आलोकित मन था
उर का प्रति स्पंदन चेतन था,
तुम थे, यदि था विरह मिलन
बरसो हे घन!
अब भीतर संशय का तम है
बाहर मृग तृष्णा का भ्रम है
क्या यह नव जीवन उपक्रम है
होगी पुनः शिला चेतन?
बरसो हे घन!
आशा का प्लावन बन बरसो
नव सौन्दर्य रंग बन बरसो
प्राणों में प्रतीति बन हरसो
अमर चेतना बन नूतन
बरसो हे घन!

25. परिणति

स्वप्न समान बह गया यौवन
पलकों में मँडरा क्षण!
बँध न सका जीवन बाँहों में,
अट न सका पार्थिव चाहों में,
लुक छिप प्राणों की छाहों में

व्यर्थ खो गया वह धन,
स्वप्नों का क्षण यौवन!
इन्द्र धनुष का बादल सुंदर
लीन हो गया नभ में उड़कर,
गरजा बरसा नहीं धरा पर
विद्युत् धूम मरुत घन,
हास अश्रु का यौवन!
विरह मिलन का प्रणय न भाया,
अबला उर में नहीं समाया,
भीतर बाहर ऊपर छाया
नव्य चेतना वह बन,
धूप-छाँह पट यौवन!
आशा और निराशा आई
सौरभ मधु पी मति अलसाई
सत्य बनी फिर फिर परछाँई,
तड़ित चकित उत्थान पतन
अनुभव रंजित यौवन!
अब उषा शशि मुख, पिक कूजन,
स्मिति आतप मंजरित प्राण मन,
जीवन स्पंदन, जीवन दर्शन
इस असीम सौन्दर्य सृजन को
आत्म समर्पण!
अचिर जगत में व्याप्त चिरंतन
ज्ञान तरुण अब यौवन!

26. ताल कुल

संध्या का गहराया झुट-पुट
भीलों का-सा धरे सिर मुकुट
हरित चूड़ कुकड़ू कूँ कुक्कुट
एक टाँग पर तुले, दीर्घतर
पास खड़े तुम लगते सुन्दर

नारिकेल के हे पादप वर!
चक्राकार दलों से संकुल
फैलाए तुम करतल वर्तुल,
मंद पवन के सुख से काँप काँप
देते कर मुख ताली थप-थप,
धन्य तुम्हारा उच्च ताल कुल!
धूमिल नभ के सामने अड़े
हाड़ मात्र तुम प्रेत से बड़े
मुझे डराते हिला हिला सर
बीस मूड़ और बाँह नचाकर!
हैं कठोर रस भरे नारिफल
मित जीवी, फैले थोड़े दल!
देवों की-सी रखते काया
देते नहीं पथिक को छाया!
अगर न ऊँचे होते दादा
कब का ऊँट तुम्हें खा जाता!
एक बार पर लगता प्यारा
दूर, तरंगित क्षितिज तुम्हारा!

27. क्रोटन की टहनी

कच्चे मन-सा काँच पात्र जिसमें क्रोटन की टहनी
ताजे पानी से नित भर टेबुल पर रखती बहनी!
धागों-सी कुछ उसमें पतली जड़ें फूट अब आईं
निराधार पानी में लटकी देतीं सहज दिखाई!
तीन पात छींटे सुफेद सोए चित्रित से जिन पर,
चौथा मुट्ठी खोल हथेली फैलाने को सुन्दर!
बहन, तुम्हारा बिरवा, मैंने कहा एक दिन हँसकर,
यों कुछ दिन निर्जल भी रह सकता है मात्र हवा पर!
किंतु चाहती जो तुम यह बढ़कर आँगन उर दे भर
तो तुम इसके मूलों को डालो मिट्टी के भीतर!

यह सच है वह किरण वरुणियों के पाता प्रिय चुंबन
पर प्रकाश के साथ चाहिए प्राणी को रज का तन!
पौधे ही क्या, मानव भी यह भू-जीवी निःसंशय,
मर्म कामना के बिरवे मिट्टी में फलते निश्वय!

28. नव वधू के प्रति

दुग्ध पीत अधखिली कली-सी
मधुर सुरभि का अंतस्तल
दीप शिखा-सी स्वर्ण करों के
इन्द्र चाप का मुख मंडल!
शरद व्योम-सी शशि मुख का
शोभित लेखा लावण्य नवल,
शिखर स्त्रोत-सी, स्वच्छ सरल
जो जीवन में बहता कल कल!
ऐसी हो तुम, सहज बोध की
मधुर सृष्टि, संतुलित, गहन,
स्नेह चेतना सूत्र में गुँथी
सौम्य, सुघर, जैसे हिमकण!
घुटनों के बल नहीं चली तुम,
धर प्रतीति के धीर चरण,
बड़ी हुई जग के आँगन में,
थामे रहा बाँह जीवन!
आती हो तुम सौ-सौ स्वागत,
दीपक बन घर की आओ,
श्री शोभा सुख स्नेह शांति की
मंगल किरणें बरसाओ!
प्रभु का आशीर्वाद तुम्हें, सेंदुर
सुहाग शाश्वत पाओ
संगच्छध्वं के पुनीत स्वर
जीवन में प्रति पग गाओ!

29. छाया दर्पण

यह मेरा दर्पण चिर मोहित!
जीवन के गोपन रहस्य सब
इसमें होते शब्द तरंगित!
कितने स्वर्गिक स्वप्न शिखर
माया की प्रिय घाटियाँ मनोरम,
इसमें जगते इन्द्रधनुष से
कितने रंगों के प्रकाश तम!
जो कुछ होता सिद्ध जगत में
मन में जिसका उठता उपक्रम
इस जादू के दर्पण में घटना
अदृश्य हो उठतीं चित्रित!
नंगे भूखों के क्रंदन पर
हँसता इसमें निर्मम शोषण,
आदर्शों के सौध बिखरते
खड़े जीर्ण जन-मन में मोहन!
झंकृत इसमें मानव आत्मा
उर-उर में जो करती घोषण
इस दर्पण में युग जीवन की
छाया गहरी पड़ी कलंकित!
दीख रहा उगता इसमें
मानव भविष्य का ज्योतित आनन
मानव आत्मा जब धरती पर
विचरेगी धर ज्योति के चरण!
डूबेंगे नव मनुष्यत्व में
देश जाति गत कटु संघर्षण
पाश मुक्त होगी यह वसुधा
मानव श्रम से बन मनुजोचित्!
कौन युवक-युवती, मानव की
घृणित विवशताओं से पीड़ित
मानवता के हित निज जीवन

प्राण करेंगी सुख से अर्पित?
(अंतर्वाह्य दैन्य दु:खों से
अगणित तन मन हैं परितापित!)
यह माया का दर्पण उनके
गौरव से होगा स्वर्णांकित!

30. मर्म कथा

बाँध दिए क्यों प्राण
प्राणों से!
तुमने चिर अनजान
प्राणों से!
गोपन रह न सकेगी
अब यह मर्म कथा,
प्राणों की न रुकेगी
बढ़ती विरह व्यथा,
विवश फूटते गान,
प्राणों से!
यह विदेह प्राणों का बंधन,
अंतर्ज्वाला में तपता तन!
मुग्ध हृदय सौन्दर्य ज्योति को
दग्ध कामना करता अर्पण!
नहीं चाहता जो कुछ भी आदान
प्राणों से!
बाँध दिए क्यों प्राण
प्राणों से!

31. प्रणय कुंज

तुम प्रणय कुंज में जब आई
पल्लवित हो उठा मधु यौवन
मंजरित हृदय की अमराई।
मलय हुआ मद चंचल

लहराया सरसी जल
अलि गूँज उठे पिक ध्वनि छाई।
अब वह स्वप्न अगोचर
मर्म व्यथाऽ, मथित करती अंतर
प्राणों के दल झर-झर
करते आकुल मर्मर।
चिर विरह मिलन में भर
तुम प्रणय कुंज में जब आई।

32. शरद चाँदनी

शरद चाँदनी!
विहँस उठी मौन अतल
नीलिमा उदासिनी!
आकुल सौरभ समीर
छल-छल चल सरसि नीर,
हृदय प्रणय से अधीर,
जीवन उन्मादिनी!
अश्रु सजल तारक दल,
अपलक दृग गिनते पल,
छेड़ रही प्राण विकल
विरह वेणु वादिनी!
जगीं कुसुम कलि
जगे रोम सिहर सिहर,
शशि असि-सी प्रेयसि स्मृति
जगी हृदय ह्लादिनी!
शरद चाँदनी!

33. मर्म व्यथा

प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी!
क्यों चिर दग्ध हृदय को तुमने
वृथा प्रणय की अमर साध दी!

पर्वत को जल दारु को अनल,
वारिद को दी विद्युत चंचल
फूल को सुरभि, सुरभि को विकल
उड़ने की इच्छा अबाध दी!
हृदय दहन रे हृदय दहन,
प्राणों की व्याकुल व्यथा गहन!
यह सुलगेगी, होगी न सहन,
चिर स्मृति की श्वास समीर साथ दी!
प्राण गलेंगे, देह जलेगी
मर्म व्यथा की कथा ढलेगी
सोने-सी तप निकलेगी
प्रेयसि प्रतिमा ममता अगाध दी!
प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी!

34. गोपन

मैं कहता कुछ रे बात और!
जग में न प्रणय को कहीं ठौर!
प्राणों की सुरभि बसी प्राणों में
बन मधु सिक्त व्यथा,
वह नीरव गोपन मर्म मधुर
वह सह न सकेगी लोक कथा।
क्यों वृथा प्रेम आया जग में
सिर पर काँटों का धरे मौर!
मैं कहता कुछ रे बात और!
सौन्दर्य चेतना विरह मूढ़,
मधु प्रणय भावना बनी मूक,
रे हूक हृदय में भरती अब
कोकिल की नव मंजरित कूक!
काले अंतर का जला प्रेम
लिखते कलियों में सटे भौंर!
मैं कहता कुछ, रे बात और!

35. स्वप्न बंधन

बाँध लिया तुमने प्राणों को फूलों के बंधन में
एक मधुर जीवित आभा-सी लिपट गई तुम मन में!
बाँध लिया तुमने मुझको स्वप्नों के आलिंगन में!
तन की सौ शोभाएँ सन्मुख चलती-फिरती लगतीं
सौ-सौ रंगों में, भावों में तुम्हें कल्पना रँगती,
मानसि तुम सौ बार एक ही क्षण में मन में जगती!
तुम्हें स्मरण कर जी उठते यदि स्वप्न आँक उर में छबि
तो आश्चर्य प्राण बन जावें गान, हृदय प्रणयी कवि?
तुम्हें देख कर स्निग्ध चाँदनी भी जो बरसावे रवि!
तुम सौरभ-सी सहज मधुर बरबस बस जाती मन में
पतझर में लाती वसंत, रस स्रोत विरस जीवन में
तुम प्राणों में प्रणय गीत बन जाती उर कंपन में!
तुम देही हो? दीपक लौ-सी दुबली कनक छबीली
मौन मधुरिमा भरी, लाज ही-सी साकार लजीली,
तुम नारी हो? स्वप्न कल्पना-सी सुकुमार सजीली?
तुम्हें देखने शोभा ही ज्यों लहरी-सी उठ आई
तनिमा, अंग भंगिमा बन मृदु देही बीच समाई!
कोमलता कोमल अंगों में पहिले तन धर पाई!
फूल खिल उठे तुम वैसी ही भू को दी दिखलाई,
सुंदरता वसुधा पर खिल सौ-सौ रंगों में छाई
छाया-सी ज्योत्स्ना सकुची, प्रतिछबि से उषा लजाई!
तुम में जो लावण्य मधुरिमा जो असीम सम्मोहन,
तुम पर प्राण निछावर करने पागल हो उठता मन!
नहीं जानती क्या निज बल तुम, निज अपार आकर्षण?
बाँध लिया तुमने प्राणों को प्रणय स्वप्न बंधन में,
तुम जानो, क्या तुमको भाया मर्म छिपा क्या मन में,
इन्द्र धनुष बन हँसती तुम वाष्पों के जीवन घन में!

36. स्वप्न देही

स्वप्न देही हो प्रिये हो तुम,
देह तनिमा अश्रु धोई!

रूप की लौ-सी सुनहली
दीप में तन के सँजोई!
सेज पर लेटी सुघर
सौन्दर्य छाया-सी सुहाई
काम देही स्वप्न-सी
स्मृति तल्प पर तुम दी दिखाई!
कल्पना की मधुरिमा-सी
भाव मृदुता में डुबोई!
देह में मृदु देह-सी
उर में मधुर उर सी समाकर,
लिपट प्राणों से गई तुम
चेतना-सी निपट सुन्दर!
प्रेम पलकों पर अकल्पित
रूप की-सी स्वप्न सोई!
विरल पट से झलक
विलुलित अलक करते हृदय मोहित,
सरित जल में तैरती ज्यों
नील पल छाया तरंगित!
काम वन में प्रणय ने हो
कामना की ज्योति बोई!
लालसा तम से तुम्हारे
कुंतलों के जाल में भ्रम
क्यों न होता प्यार अंधा
छबि अपार निहार निरुपम!
मर्म की आकुल तृषा तुम
प्रणय श्वासों में पिरोई!
स्नेह प्रतिमा-सी मनोरम
मर्म इच्छा से विनिर्मित,
हृदय शतदल में सतत्
तुम झूलती अभिलाष स्पंदित!

सार तत्त्वों की बनी तुम
देह भूतों बीच खोई!

37. हृदय तारुण्य

आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित
गंध समीरण मंद संचरित!
प्राणों की पिक बोल उठी फिर
अंतर में कर ज्वाल प्रज्ज्वलित!
डाल-डाल पर दौड़ रही वह
ज्वाल रंग रंगों में कुसुमित
नस-नस में कर रुधिर प्रवाहित
उर में रस वश गीत तरंगित!
तन का यौवन नहीं हृदय का
यौवन रे यह आज उच्छ्वसित
फिर जग में सौन्दर्य पल्लवित
प्राणों में मधु स्वप्न जागरित!
आम्र मंजरित, मधुप गुंजरित
गंध समीरण अंध सचरित!
प्राणों में पिक बोल उठी फिर
दिशि दिशि में कर ज्वाल प्रज्ज्वलित!

38. प्रेम मुक्ति

एक धार बहता जग जीवन
एक धार बहता मेरा मन!
आर-पार कुछ नहीं कहीं रे
इस धारा का आदि न उद्गम!
सत्य नहीं यह स्वप्न नहीं रे
सुप्ति नहीं यह मुक्ति न बंधन
आते-जाते विरह मिलन नित
गाते रोते जन्म मृत्यु क्षण!
व्याकुलता प्राणों में बसती

हँसी अधर पर करती नर्तन
पीड़ा से पुलकित होता मन
सुख से ढ़लते आँसू के कण!
शत वसंत शत पतझर खिलते
झरते, नहीं कहीं परिवर्तन,
बँधे चिरंतन आलिंगन में
सुख दुख, देह-जरा उर यौवन!
एक धार जाता जग जीवन
एक धार जाता मेरा मन,
अतल अकूल जलधि प्राणों का
लहराता उर में भर कंपन!

39. प्राणाकांक्षा

बज पायल छम
छम छम!
उर की कंपन में निर्मम
बज पायल छम
छम छम!
हृदय रक्त रंजित सुंदर
नृत्य मुग्ध प्रिय चरणों पर
प्राणों की स्वर्णाकांक्षा सम
प्रणय जड़ित, चंचल, निरुपम,
बज पायल छम
छम छम!
उद्वेलित हो जब अंतर
व्यथा लहरियों पर पग धर
जीवन की गति लय से अक्लम
पद उन्मद, मत थम, मत थम
बज पायल छम
छम छम!

40. साधना

जीवन की साधना
असफल जो सफल बना
सिद्धि सही चिर तपना!
जीवन की साधना!
विपदाएँ,
दुराशाएँ
नष्ट मुझे कर जाए,
भ्रष्ट न हो पथ अपना!
चूर्ण हुई जो आशा,
पूरी न जो अभिलाषा,
चूर्ण हुई जो आशा–
भूषित हो उनसे मन
लांछन से शशि शोभन
सत्य बने जो स्वप्ना!
जीवन की साधना!

41. रस स्रवण

रस बन रस बन,
प्राणों में!
निष्ठुर जग निर्मम जीवन
रस बन रस बन
प्राणों में!
अंतस्तल में यथा मथित हो,
भाग भंगि में ज्ञान ग्रथित हो,
गीति छंद में प्रीति रटित हो,
क्षण-क्षण छन
रस बन रस बन
प्राणों में!
तम से मुक्त प्रकाश उदित हो
घृणा युक्त उर दया द्रवित हो

जड़ता में चेतना अमृत हो
गरज न घन,
रस बन रस बन
प्राणों में

42. आह्वान

फिर वीणा मधुर बजाओ!
वाणी नव स्वर में गाओ!
उर के कंपित तारों में
झंकार अमर भर जाओ!
उन्मेषित हो अंतर
स्पंदित प्राणों के स्तर,
नव युग के सौन्दर्य ज्वार में
जीवन तृषा डुबाओ!
ज्योतित हो मानव मन,
निर्मित नव भव जीवन,
देश जाति वर्णों से
निखरे नव मानवपन!
शोभा हो, श्री सुषमा
धरणि स्वर्ग की उपमा
दिव्य चेतना की जग में
स्वर्णिम किरणें बरसाओ!
फिर वीणा मधुर बजाओ!

43. अंतर्लोक

यह वह नव लोक
जहाँ भरा रे अशोक
सूक्ष्म चिदालोक!
शोभा के नव पल्लव
झरता नभ से मधुरव
शाश्वत का पा अनुभव

मिटता उर शोक,
स्वर्ग शांति ओक,
रूप रेख जग की लय
बनती वर देवालय,
श्रद्धा में बिकसित भय,
भक्ति मधुर सुख-दुख द्वय!
बनता संशय
चिर विश्वास नहीं रोक
क्रांति को विलोक!
यह वह वर लोक
हृदय में उदय अशोक
सूक्ष्म चिदालोक!
स्वर्ण शांति ओक!

44. स्वर्ग अप्सरी

सरोवर जल में स्वर्ण किरण
रे आज पड़ी वलित चरण!
अतल से हँसी उमड़ कर
लसी लहरों पर चंचल,
तीर-सी धँसी किरण वह
ज्योति बसी प्राणों में निस्तल!
उड़ रहे रश्मि पंख कण
जगमगाए जीवन क्षण!
सजल मानस में मेरे
अप्सरी कैसे मरे
स्वर्ग से गई उतर
कब जाने तिर भीतर ही भीतर!
आज शोभा-शोभा जल
ज्योति में उठा अखिल जल,
सहज शोभा ही का सुख
लोट रहा लहरों में प्रतिपल!

जागती भावों में छवि
गा रहा प्राणों में कवि
चेतना में कोमल
आलोक पिघल
ज्यों स्वत: गया ढल!
हृदय सरसी के जल-कण
सकल रे स्वर्ण के वरण
ज्योति ही ज्योति अजल जल
डूब गए चिर जन्म और मरण!

45. प्रीति निर्झर

यहाँ तो झरते निर्झर,
स्वर्ण किरणों के निर्झर,
स्वर्ग सुषमा के निर्झर
निस्तल हृदय गुहा में
नीरव प्राणों के स्वर!
ज्ञान की कांति से भरे
भक्ति की शांति से परे,
गहन श्रद्धा प्रतीति के
स्वर्णिम जल में तिरते
सतत् सत्य शिव सुंदर!
अश्रु मज्जित जीवन मुख
स्वप्न रंजित से सुख-दुख,
रहस आनंद तरंगित
सहज उच्छ्वसित हृदय सरोवर!
गान में भरा निवेदन
प्राण में भरा समर्पण
ध्यान में प्रिय दर्शन
प्रिय ही प्रिय रे गायन
अर्हनिशि भीतर बाहर
यहाँ तो झरते निर्झर

स्वर्ण के सौ-सौ निर्झर
स्वर्ग शोभा के निर्झर
उमड़ उमड़ उठता
प्रतीति के सुख से अंतर!

46. मातृ शक्ति

दिव्यानने,
दिव्य मने
भव जीवन पूर्ण बने!
दिव्यानने!
आभा सर
लोचन वर
स्नेह सुधा सागर!
स्वर्ग का प्रकाश
हास
करता उर तम विनाश,
किरणें बरसा कर!
भय भंजने,
जन रंजने!
तुम्हीं भक्ति
तुम्हीं शक्ति
ज्ञान ग्रथित सदनुरक्ति!
चिर पावन
सृजन चरण,
अर्पित तन
मन जीवन!
हृदयासने
श्री वसने!

47. प्रणाम

श्री अरविन्द सभक्ति प्रणाम!
स्वर्मानस के ज्योतित सरसिज,

दिव्य जगत जीवन के वर द्विज
चिदानंद के स्वर्णिम मनसिज
ज्योति धाम
सज्ञान प्रणाम!
विश्वात्मा के नव विकास तुम
परम चेतना के प्रकाश तुम
ज्ञान भक्ति श्री के विलास तुम
पूर्ण प्रकाम
सकर्म प्रणाम!
दिव्य तुम्हारा परम तपोबल
अमृत ज्योति से भर दे भूतल,
सफल मनोरथ सृष्टि हो सकल
श्री ललाम
निष्काम प्रणाम!

48. मातृ चेतना

तुम ज्योति प्रीति की रजत मेघ
भरती आभा स्मिति मानस में
चेतना रश्मि तुम बरसातीं
शत तड़ित अर्चि भर नस-नस में!
तुम उषा तूलि की ज्वाला से
रँग देती जग के तम भ्रम को,
वह प्रतिभा, स्वर्णांकित करती
संसृति के जो विकास क्रम को!
तुम सृजन शक्ति जो ज्योति चरण धर
रजत बनाती रज कण को,
जड़ में जीवन, जीवन में मन
मन में सँवारती स्वर्मन को!
तुम जननि प्रीति की स्रोतस्विनि
तुम दिव्य चेतना दिव्य मना,
तुम स्वर्ण किरण की निर्झरिणी,

आभा देही आभा वसना!
मुख पर हिरण्यमन अवगुंठन
प्राणों का अर्पित तुमको मन
स्वीकृत हो तुम्हें स्पर्शमणि यह,
स्वर्णिम हों मेरे जीवन क्षण!

49. अंतर्विकास

विभा, विभा
जगत ज्योति तमस द्विभा!
झरता तम का बादल
इंद्रधनुष रंग में ढल
ओझल हँस इंद्रधनुष
केवल फिर चिर उज्वल
विभा!
मनस रूप भाव द्विभा!
इंद्रियाँ स्वरूप जड़ित,
रूप भाव बुद्धि जनित
भाव दुख-सुख कल्पित,
ज्ञान भक्ति में विकसित,
विभा!
जीवन भव सृजन द्विभा!
सृजन शील जग विकास,
जड़ जीवन मनोभास,
आत्माहम्, परे मुक्ति,
स्वर्ण चेतना प्रकाश,
विभा!
जन्म मरण मात्र द्विभा!

50. प्रतीति

विहगों का मधुर स्वर
हृदय क्यों लेता हर?

क्यों चपल जल लहर
तन में भरती सिहर?
तुमसे!
नीला सूना-सा नभ
देता आनंद अलभ
उषा संध्या द्वाभा
स्वर्ण प्रभ,
तुमसे!
यह विरोध वारिधि जग
शूल फूल सँग प्रतिपग
लगता प्रिय मधुर सुभग,
तुमसे!
लुटे घर द्वार मान,
छुटे तन मन प्राण,
कहता है बार-बार
मानव हृदय पुकार
रह सकूँगा निराधार
तुमसे?
आशाएँ हो न पूर्ण
अभिलाषा अखिल चूर्ण
जीवन बन जाय भार
सूख जाये स्नेह धार
विजय बनेगी हार
तुमसे!

51. सार्थकता

वसुधा के सागर से
उठता जो वाष्प भार
बरसता न वसुधा पर
बन उर्वर वृष्टि धार,
सार्थक होता?

तूने जो दिया मुझे
अमर चेतना का दान
तेरी ओर मेरा प्यार
होता न धावमान,
सार्थक होता?
घुमड़ता छायाकाश
गरजता अंधकार
मृत्यु बाहुओं में बँधी
चेतना करती पुकार,
सार्थक होता?
मर्त्य रहे स्वर्ग रहे
सृष्टि का आवागमन
प्राणों में बना रहे
तेरा चिर रहस मिलन
जीवन सार्थक होगा!

52. कुंठित

तुम्हें नहीं देता यदि अब सुख
चंद्रमुखी का मधुर चंद्रमुख
रोग जरा और मृत्यु देह में,
जीवन चिन्तन देता यदि दुख
आओ प्रभु के द्वार!
जन समाज का वारिधि विस्तृत
लगता अचिर फेन से मुखरित
हँसी खेल के लिए तरंगें
तुम्हें न यदि करतीं आमंत्रित
आओ प्रभु के द्वार!
मेघों के संग इन्द्रचाप स्मित
यदि न कल्पना होती धावित,
शरद वसंत नहीं हरते मन
शशिमुख दीपित, स्वर्ण मंजरित

आओ प्रभु के द्वार!
प्राप्त नहीं जो ऐसे साधन
करो पुत्र दारा का पालन,
पौरुष भी जो नहीं कर सको
जन मंगल जनगण परिचालन
आओ प्रभु के द्वार!
संभव है तुम मन से कुंठित
संभव है, तुम जग से लुंठित
तुम्हें लोह से स्वर्ण बना प्रभु
जग के प्रति कर देंगे जीवित,
आओ प्रभु के द्वार!

53. आर्त

आवें प्रभु के द्वार!
जो जीवन में परितापित हैं,
हतभागे, हताश, शापित हैं,
काम क्रोध मद से त्रसित हैं,
आवें वे आवें वे प्रभु के द्वार!
बहती है जिनके चरणों से पतित पावनी धार!
जो भू के मन के वासी हैं,
स्त्री धन जन यश फल आशी हैं,
ज्ञान भक्ति के अभिलाषी हैं,
आवें वे आवें वे प्रभु के द्वार!
प्रभु करुणा के महिमा के हे मेघ उदार!
पांथ न जो आगे बढ़ सकते,
सुख में थकते, दुख में थकते,
टेढ़े-मेढ़े कुंठित लगते,
आवें वे आवें वे प्रभु के द्वार!
पूर्ण समर्पण कर दें प्रभु को लेंगे सकल सँवार!
सब अपूर्ण खंडित इस जग में
फूलों से काँटे ही मग में

मृत्यु साँस में, पीड़ा रग में
आवें वे आवें वे प्रभु के द्वार!
केवल प्रभु की करुणा ही है अक्षय पूर्ण उदार?

54. चेतन

गगन में इंद्रधनुष,
अवनि में इंद्रधनुष!
नयन में दृष्टि किरण
श्रवण में शरद गगन
हृदय के स्तर-स्तर में
उदित वह भिन्य वपुष!
अचित् का चिर जहाँ तम,
दुरित जड़ता औ भ्रम
जगत जीवन अमा में
सुवित वह ज्योति पुरुष!
तमस में गिर न रँगा
नींद से पुनः जगा
मरण के आवरण से
प्रकट वह चिर अकलुष!
तृणों में इंद्रधनुष
कणों में इंद्रधनुष
स्पर्श पा चेतन का
जग उठे शप्त नहुष!

55. मृत्युंजय

ईश्वर को मरने दो, हे मरने दो
वह फिर जी उठेगा, ईश्वर को मरने दो!
वह क्षण-क्षण गिरता, जी उठता
ईश्वर को चिर नव स्वरूप धरने दो!
शत रूपों में, शत नामों में, शत देशों में
शत सहस्रबल होकर उसे सृजन करने दो,

क्षण अनुभव के विजय पराजय जन्म-मरण
और हानि लाभ की लहरों में उसको तरने दो!
ईश्वर को मरने दो हे फिर फिर मरने दो!
दूर नहीं वह तन से, मन से या जीवन से,
अथवा रे जनगण से!
द्वेष कलह संग्राम बीच वह
अंधकार से और प्रकाश से शक्ति खींच वह
पलता, बढ़ता, विकसित होता अहरह
अपने दिव्य नियम से!
दूर नहीं वह तन से, मन से या जीवन से,
अथवा रे जनगण से!
एक दृष्टि से एक रूप में, देख रहे हम
इस भूमी को जग को औ जग के जीवन को निश्वय,
इसमें सुख-दुख जरा मरण हैं जड़ चेतन
संघर्ष शांति-यह रे द्वन्दों का आशय!
परम दृष्टि से परम रूप में यह है ईश्वर,
अजर अमर और एक अनेक सर्वगत अक्षर
व्यक्ति विश्व जड़ स्थूल सूक्ष्मतर!
स प्रत्यगात् शुक्रमकायमव्रणम्
अश्नाविरं शुद्धमपापबिद्धम्
कविर्मनीपी परिभू स्वयंभूकृपूर्ण परात्पर!
मरने दो तब ईश्वर को मरने दो हे
वह जी उठेगा ईश्वर को मरने दो!
वह फिर फिर मरता, जी उठता
ईश्वर को चिर मुक्त सृजन करने दो!

56. अविच्छिन्न

हे करुणाकर, करुणा सागर!
क्यो इतनी दुर्बलताओं का
दीप शून्य गृह मानव अंतर!
दैन्य पराभव आशंका की

छाया से विदीर्ण चिर जर्जर!
चीर हृदय के तम का गह्वर
स्वर्ण स्वप्न जो आते बाहर
गाते वे किस भाँति प्रीति
आशा के गीत प्रतीति से मुखर?
तुम अपनी आभा में छिपकर
दुर्बल मनुज बने क्यों कातर!
यदि अनंत कुछ इस जग में
वह मानव का दारिद्रय भयंकर!
अखिल ज्ञान संकल्प मनोबल
पलक मारते होते ओझल,
केवल रह जाता अथाह नैराश्य,
क्षोभ संघर्ष निरंतर!
देव पूर्ण निज रूपों में स्थित
पशु प्रसन्न जीवन में सीमित,
मानव की सीमा अशांत
छूने असीम के छोर अनश्वर!
एक ज्योति का रूप यह तमस
कूप वारि सागर का अंभस-
यह उस जग का अंधकार
जिसमें शत तारा चंद्र दिवाकर!

57. चित्रकरी

जीवन चित्रकरी हे
सृजन आनंद परी हे,
करो कुसुमित वसुधा पर
स्वर्ण की किरण तूलि धर
नव्य जीवन सौन्दर्य अमर
जग की छबि रेखाओं में
रूप रंग भर!
सूक्ष्म दर्शन से प्रेरित

करो जग जीवन चित्रित
मधुर मानवता का मुख
अंतर आभा से कर मंडित!
जीवन चित्रकरी हे,
सृजन सौन्दर्य परी हे,
खो गए भेदों में जन
अहम् में सुप्त अब परम
प्रेम विश्वास शौर्य
स्वर्णिम आशा से भर दो जन मन!
अरुण अनुराग रंगो घन
शांति के शुभ्र हों वसन
हरित रंग शक्ति पीत रंग भक्ति
ज्ञान का नील हो गगन!
जीवन चित्रकरी हे
सृजन ऐश्वर्य परी हे
देह सौन्दर्य गठित हो
प्राण आनंद सरित हों
दृष्टि नव स्वप्न जड़ित हो
स्वर्ण चेतना से जग जीवन
आलोकित हो!

58. निर्झर

तुम झरो हे निर्झर
प्राणों के स्वर
झरो हे निर्झर!
चिर अगोचर
नील शिखर
मौन शिखर
तुम प्रशस्त मुक्त मुखर,--
झरो धरा पर
भरो धरा पर

नव प्रभात, स्वर्ग स्नात,
सद्य सुघर!
झरो हे निर्झर
प्राणों के स्वर
झरो हे निर्झर!
ज्योति स्तंभ सदृश उतर
जव में नव जीवन भर
उर में सौन्दर्य अमर
स्वर्ण ज्वार से निर्भर
झरो धरा पर
भरो धरा पर
तप पूत नवोद्‌भूत
चेतना वर!
झरो हे निर्झर!

59. अंतर्वाणी

नि:स्वर वाणी
नीरव मर्म कहानी!
अंतर्वाणी!
नव जीवन सौन्दर्य में ढलो
सृजन व्यथा गांभीर्य में गलो
चिर अकलुष बन विहँसो हे
जीवन कल्याणी,
नि:स्वर वाणी!
व्यथा व्यथा
रे जगत की प्रथा,
जीवन कथा
व्यथा!
व्यथा मथित हो
ज्ञान ग्रथित हो
सजल सफल चिर सबल बनो हे

उर की रानी
नि:स्वर वाणी!
व्यथा हृदय में
अधर पर हँसी,
बादल में
शशि रेख हो लसी!
प्रीति प्राण में
अमर हो बसी
गीत मुग्ध हों जग के प्राणी
नि:स्वर वाणी!

60. ज्योति झर

बरसो ज्योति अमर
तुम मेरे भीतर बाहर
जग के तम से निखर-निखर
बरसो हे जीवन ईश्वर!
झरते मोती के शत निर्झर
शैल शिखर से झर-झर
फूटें मेरे प्राणों से भी
दिव्य चेतना के स्वर!
तन-मन के जड़ बंधन टूटें
जीवन रस के निर्झर छूटें,
प्राणों का स्वर्णिम मधु लूटें
मुग्ध निखिल नारी नर!
विनों के गिरि शृंग गिरें
चिर मुक्त सृजन आनंद झरे,
फिर नव जीवन सौन्दर्य भरे
जग के सरिता सर सागर!
बरसो जीवन ज्योति हे अमर
दिव्य चेतना की सावन झर,

स्वर्ण काल के कुसुमित अक्षर
फिर से लिख वसुधा पर!

61. मुक्ति बंधन

क्यों तुमने निज विहग गीत को
दिया न जग का दाना पानी
आज आर्त अंतर से उसके
उठती करुणा कातर वाणी!
शोभा के स्वर्णिम पिंजर में
उसके प्राणों को बंदी कर
तुमने क्यों उसके जीवन की
जीव मुक्ति ली पल भर में हर!
नीड़ बनाता वह डाली पर,
फिरता आँगन में कलरव भर,
उसे प्रीति के गीत सिखाने
दग्ध कर दिया तुमने अंतर!
उड़ता होता क्या न गगन में?
चुगता होता दाने भू पर
अपना उसे बनाने तुमने
लिए जीव के पंख ही कुतर!
क्यों तुमने निज गीत विहग को
दिया न भू का दाना पानी
उसके आर्त हृदय से फिर-फिर
उठती सुख की कातर वाणी!

62. लक्ष्मण

विश्व श्याम जीवन के जलधर
राम प्रणम्य, राम हैं ईश्वर!
लक्ष्मण निर्मल स्नेह सरोवर
करुणा सागर से भी सुंदर!
सीता के चेतना जागरण

राम हिमालय से चिर पावन,
मेरे मन के मानव लक्ष्मण
ईश्वरत्व भी जिन्हें समर्पण!
धीर वीर अपने पर निर्भर
झुका अहं धनु धर सेवा शर
कब से भू पर रहे वे विचर
लक्ष्मण सच्चे भ्राता, सहचर!
युग-युग से चिर असि व्रत चारी,
जग जीवन विनों के हारी
जन सेवा उनकी प्रिय नारी
वह उर्मिला, हृदय को प्यारी!
रुधिर वेग से कंपित थर-थर
पकड़ ऊर्मिला का पल्लव कर
बोले, 'प्रिये, बिदा दो हँसकर
संग राम के जाता अनुचर।'
चौदह बरस रहे वह बाहर
बिछुड़े नहीं प्रिया से क्षण भर
सजग ऊर्मिला थी उर भीतर
मानस की-सी ऊर्मि निरंतर!
स्नेह ऊर्मिला का चिर चिश्छल
नहीं जानता विरह मिलन पल
वह बह-बह अंतर में अविरल
बनता रहता सेवा मंगल!
वह सेवा कर्त्तव्य नहीं है
वह भीतर से स्वतः बही है
हार्दिकता की सरित रही है
जिससे निश्चित हरित मही है!
सहज सलज्ज सुशील स्नेहमय,
जन-जन के साथी, चिर सहृदय,
मुक्त हृदय विनम्र अति निर्भय
जन्म-जन्म का हो ज्यों परिचय,

जाते वे सन्मुख प्रसन्न मन
भू पर नत आनंद के गगन–
बरस गया जिसका ममत्व घन
गौर चाँदनी-सा चेतन तन!
ऐसे भू के मानव लक्ष्मण
कभी गा सकूँ उनका जीवन,
छू जिनके सेवा निरत चरण
बिछ जाते पथ शूल फूल बन!
राम पतित पावन, दुख मोचन
लक्ष्मण भव सुख-दुख में शोभन!
वे सर्वज्ञ, सर्वगत, गोपन
ज्ञान मुक्त ये पद नत लोचन!

63. 15 अगस्त, 1947

चिर प्रणम्य यह पुण्य अहन् जय गाओ सुरगण,
आज अवतरित हुई चेतना भू पर नूतन!
नव भारत, फिर चीर युगों का तमस आवरण
तरुण अरुण-सा उदित हुआ परिदीप्त कर भुवन!
सभ्य हुआ अब विश्व सभ्य धरणी का जीवन,
आज खुले भारत के सँग भू के जड़ बंधन!
शांत हुआ अब युग-युग का भौतिक संधर्षण
मुक्त चेतना भारत की यह करती घोषण!
आम्र मौर लाओ हे, कदली स्तंभ बनाओ,
ज्योतित गंगा जल भर मंगल कलश सजाओ!
नव अशोक पल्लव के बंदनवार बँधाओ
जय भरत गाओ स्वतंत्र जय भारत गाओ!
उन्नत लगता चंद्र कला स्मित आज हिमाचल
चिर समाधि के जाग उठे हों शंभु तपोज्वल!
लहर लहर पर इंद्रधनुष ध्वज फहरा चंचल
जय निनाद करता, उठ सागर सुख से विह्वल!
धन्य आज का मुक्ति दिवस गाओ जन मंगल

भारत लक्ष्मी से शोभित फिर भारत शतदल!
तुमुल जयध्वनि करो, महात्मा गाँधी की जय
नव भारत के सुज्ञ सारथी वह निःसंशय!
राष्ट्र नायकों का हे पुत्र करो अभिवादन
जीर्ण जाति में भरा जिन्होंने नूतन जीवन!
स्वर्ण शस्य बाँधों भू वेणी में युवती जन
बनो बज्र प्राचीर राष्ट्र की, मुक्त युवकगण!
लोह संगठित बने लोक भारत का जीवन,
हों शिक्षित संपन्न क्षुधातुर नग्न भग्न जन!
मुक्ति नहीं पलती दृग जल से हो अभिसिंचित,
संयम तप के रक्त स्वेद से होती पोषित!
मुक्ति माँगती कर्म वचन मन प्राण समर्पण
वृद्ध राष्ट्र को वीर युवकगण को निज यौवन!
नव स्वतंत्र भारत हो जग हित ज्योति जागरण,
नव प्रभात में स्वर्ण स्नात हो भू का प्रांगण!
नव जीवन का वैभव जाग्रत हो जनगण में
आत्मा का ऐश्वर्य अवतरित मानव मन में!
रक्त सिक्त धरणी का हो दुःस्वप्न समापन,
शांति प्रीति सुख का भू स्वर्ग उठे सुर मोहन!
भारत का दासत्व दासता थी भू मन की
विकसित आज हुई सीमाएँ जग जीवन की!
धन्य आज का स्वर्ण दिवस नव लोक जागरण
नव संस्कृति आलोक करे जन भारत वितरण!
नव जीवन की ज्वाला से दीपित हों दिशि क्षण,
नव मानवता में मुकुलित धरती का जीवन!

64. ध्वजा वंदना

फहराओ तिरंगा फहराओ!
हिन्द चेतना के जाग्रत ध्वज
ज्योति तरंगों में लहराओ!
इंद्र धनुष से गर्जन घन में

पौरुष से जग जीवन रण में
जन स्वतंत्रता के प्रांगण में
विजय शिखा से उठ छहराओ!
उठते तुम उठते दृग अपलक
स्वाभिमान से उठते मस्तक
उठते बहु भुज चरण अचानक,,
लोहे की दीवार गरजती
हमें त्याग का पथ दिखलाओ!
तुम्हें देख जन-मन निर्भय हो
धरती पर नव स्वर्णोदय हो,
आत्म विजय ही विश्व विजय हो
जब-जब जग में लोक क्रांति हो
तुम प्रकाश किरणें बरसाओ!
भगे अविद्या दैन्य निराशा
जगे उच्च जीवन अभिलाषा
एक ध्येय हो भूषा भाषा
प्रेम शक्ति के शांति चक्र तुम
जग में चिर जन मंगल लाओ!

65. आर्षवाणी

दीपशिखा महादेवी को
दीपशिखे, तुमने जल जल कर ऊर्ध्व ज्योति की वर्षण,
ये आलोक ऋचाएँ तुमको करता सहज समर्पण।

66. ज्योति वृषभ

स्वर्ण शिखर से चतुर्शृंग है उसके शिर पर
दो उसके शुभ शीर्ष सप्त रे ज्योति हरत वर!
तीन पाद पर खड़ा, मर्त्य इस जग में आकर
त्रिधा बद्ध वह वृषभ रँभाता है दिग्ध्वनि भर!
महादेव वह सत्य पुरुष और प्रकृति शीर्ष द्वय
चतुर्शृंग सच्चिदानंद विज्ञान ज्योतिमय!

सप्त चेतनालोक, हस्त्र उसके नि:संशय,
महादेव वह सत्य ज्योति का वृष वह निश्वय!
सत् रज राम से त्रिधा बद्ध पद अन्न प्रान मन,
मर्त्य लोक में कर प्रवेश वह करता रंभण!
महादेव वह सत्य मुक्ति के लिए अनामय
फिर-फिर हंभा रण करता जय, ज्योति वृषभ, जय!

67. अग्नि

दीप्त अभीप्से मुझको तू ले जा सत्पथ पर
यज्ञ कुंड हो मेरा हृदय अग्नि हे भास्वर!
प्राण बुद्धि मन की प्रदीप्त घृत आहुति पाकर
मेरी ईप्सा को पहुँचा दे परम व्योम पर!
तू भुवनों में व्याप्त निखिल देवों की ज्ञाता
यज्ञ अंश के भागी वे तू उनकी त्रता!
निशि दिन बुद्धि कर्म की हवि दे भूरि कर नमन
आते हम तेरे समीप हे अग्नि प्रतिक्षण!
निज यज्ञों में मरणशील हम करते पूजन
उस अमर्त्य का जो सब के अंतर में गोपन!
यदि तू मैं, मैं तू बन जाऊँ शिखे ज्योतिमय
तो तेरे आशीष सत्य हों, जीवन सुखमय!
मन से ज्ञान रश्मियों से कर तुझे प्रज्ज्वलित
हम सद्बुद्धि तेज, सत्कर्मों को पाते नित।
जिन-जिन देवों का करते हम अहर्निशि यजन
वे शाश्वत विस्तृत हवि तुझको अग्नि समर्पण!
ज्योति प्रचेता निहित अकवियों में तू कवि बन,
मर्त्यों में तू अमृत, वरुण के हरती बंधन!
कैसे तुझे प्रसन्न करें हम, वरें दीप्त मन,
ज्ञात नहीं पथ, प्राप्त नहीं तप बल या साधन!
कौन मनीषा यज्ञ भेंट दें कौन हवि स्तवन
जिससे अग्नि, शिखा तेरी कर सके मन वहन!

68. काल अश्व

काल अश्व यह तप शक्ति का रूप चिर अंतर
आशा पृष्ठ पर धावमान अति दिव्य वेग भर!
महावीय यह सप्त रश्मियों से हो शोभित
चला रहा भव को सहस्त्रधर, प्राण से श्वसित!
भुवन-भुवन सब घूम रहे चक्रों से अविरत
अहा अश्व यह खींच रहा अश्रांत विश्व रथ!
गतद्रष्टा ऋषि त्रिकाल दर्शी जो कविगण
तिस पर करते धीर विपश्चित ही आरोहण!
निष्ठुर विधि से पीड़ित जग के शेष चराचर
परिवर्तन चक्रों में पिसकर होते जर्जर!
वाम रूप में ही जिनका मन मोहित सीमित
सबल पदाघातों से वे नित होते मर्दित!
काल बोध विस्तृत करता मन को देता बल
निखिल वस्तुएँ क्षण घटनाएँ जग में केवल!
बहिरंतर जो निज को कर सकते संयोजित
नहीं व्यापती काल अश्वगति उनको निश्वित!
अथवा जो निर्द्वन्द्व शुद्ध निर्लिप्त ऊर्ध्वचित्,
दिव्य तुरग पर चढ़ जाते वे पार आत्मजित्!

69. देव काव्य

तरुण युवक वो, कर्मों में था जिसको कौशल
रण में अरियों के मद को करता था हत बल,
पलित वृद्ध उसको माता हे आज रे निगल
मृतक पड़ा वह वीर, साँस लेता था जो कल!
इस महत्त्वमय देव काय को देखो प्रतिपल
क्षण भंगुर यह विश्व काल का मात्र रे कँवल!
चंद्र, सूर्य की आभा में यों हो जाता लय,
प्राण इंद्रियाँ आत्मा में मिलतीं नि:संशय!
नित्य इंद्रियों से अतीत आत्मा का जीवन,

अमृत नाभि जो अन्न प्राण मन की चिर गोपन!
व्यक्ति क्षुद्र है विश्व परिधि सत्ता से अक्षय,
सृजन शील परिवर्तन नियम सनातन निश्वय!
नाम रुप परिधान पुरुष के मात्र रे वसन,
आत्मवान् होते न काल के दर्शन के अशन!
दिव्य पुरुष ओ अति समीप अंतरतम में स्थित,
नहीं देख पाते जन उसको वह अभिन्न नित!
देखो उसके भिन्न काव्य को संसृति विस्तृत,
वह न कभी मरता न जीर्ण होता वेदामृत!

70. देव

कर्म निरत जन ही देवों से होते पोषित
निरलस रे वे स्वयं अहर्निशि रहते जागृत!
दिति पुत्रों को अदिति सुतों के कर चिर आश्रित
मैंने अपने को देवों को किया समर्पित!
देवों का है तेज गभीर सिन्धु-सा विस्तृत,
वे महान सब से विनम्रता से चिर भूषित!
मानव, तुम शत हस्त करो वैभव एकत्रित
और सहस्त्र कर होकर उसे करो नित वितरित!
इस प्रकार सब पुण्य करो अपने में संचित
अपने कृत क्रियमाण कर्म चिर कर संयोजित!
गाँवों के पशु तकते ज्यों वन पशुओं का पथ
पाप कर्म तुम छोड़ रहो सत्कर्मों में रत!
साथ चलो सब के हित बोलो बनो संगठित
साथ मनन कर करो समान गुणों को अर्जित!
एक ज्ञान और एक प्राण सब रहो सम्मिलित,
तुम देवों के तुल्य बनो सहयोग समन्वित!
व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा ग्रहण कर
उससे श्रद्धा, श्रद्धा से कर प्राप्त सत्य वर
ऋतंभरा प्रज्ञा से भर निज ज्योतित अंतर
तुम देवों के योग्य बनो और मर्त्य से अमर!

71. पुरुषार्थ

कभी न पीछे हटने वाले ही पाते जय
बहिरंतर के ऐश्वर्यों का करते संचय!
वह प्रतिजन का हो अथवा सामूहिक वैभव
ऐहिक आत्मिक सुख पुरुषार्थी के हित संभव!
ठुकरा सकते वीर मृत्यु पद जो पग-पग पर,
आत्म त्याग, उत्सर्ग हेतु जो रहते तत्पर,
दीर्घ विशद् विस्तृत जीवन धारण कर निश्चय,
धान्य प्रजा संयुक्त सदा बनते समृद्धिमय।
शुद्ध चित्त बन दीप्त अभीप्सा हवि कर,
विश्व यज्ञ में, बनें मनुज सब अमृत, मृत्युजित,
उठें सत्य से प्रेरित होकर दुर्बल पीड़ित,
बनें सत्य के सम्मुख सत्ताधारी विनयित!
ऋत की रे संपदा शुद्ध, निष्कलुष समर्पित,
सुनता है आह्वान सत्य का बधिर भी श्रवित,
दुह सुहस्त गोधुक कोई, सुद्धा गो को नित,
हमें पिलावे सविता का रस, ऋत दुग्धामृत!

72. अंतर्गमन

दाँई बाँई ओर, सामने पीछे निश्चित
नहीं सूझता कुछ भी बहिरंतर तमसावृत!
हे आदित्यो मेरा मार्ग करो चिर ज्योतित
धैर्य रहित मैं भय से पीड़ित अपरिपक्व चित!
विविध दृश्य शब्दों की माया गति से मोहित
मेरे चक्षु श्रवण हो उठते मोह से भ्रमित!
विचरण करता रहता चंचल मन विषयों पर
दिव्य हृदय की ज्योति बहिर्मुख गई है बिखर!
तेजहीन मैं क्या उत्तर दूँ करूँ क्या मनन,
मैं खो गया विविध द्वारों से कर बहिर्गमन!
भरते थे सुन्दर उड़ान जो पक्षी प्रतिक्षण

प्रिय था जिन इंद्रियों को सतत् रूप संगमन!
आज श्रांत हो विषयाघातों से हो कातर
तुम्हें पुकार रहीं वे ज्योति मनस् के ईश्वर!
रूप पाश में बद्ध ज्ञान में अपने सीमित
इन्द्र, तुम्हारी अमित ज्योति के हित उत्कंठित!
प्रार्थी वे हे देव हटा यह तमस आवरण
ज्ञान लोक में आज हमारे खोलो लोचन!
ज्योति पुरुष तुम जहाँ, दिव्य मन के हो स्वामी
निखिल इंद्रियों के परिचालक अंतर्यामी!
ऋत चित से है जहाँ सूक्ष्म नभ चिर आलोकित
उस प्रकाश में हमें जगाओ, इन्द्र अपरिमित!

73. एकं सत्

इन्द्रदेव तुम स्वभू सत्य सर्वज्ञ दिव्य मन
स्वर्ग ज्योति चित् शक्ति मर्त्य में लाते अनुक्षण!
ऋभुओं से त्रय रचित तुम्हारा ज्योति अश्व रथ
प्राण शक्ति मरुतों से विन रहित विग्रह पथ!
तुम्हीं अग्नि हो, सप्तजिह्व अति विव्य तपस द्युति
पहुँचाती जो अमर लोक तक धी घृत आहुति!
दिव्य वरुण तुम, चिर अकलुष ज्यों विस्तृत सागर
मन की तपः पूत स्थिति, उज्ज्वल, अखिल पाप हर!
तुम्हीं मित्र हो ज्योति प्रीति की शक्ति समन्वित
राग बुद्धि कर्मों में समता करते स्थापित!
गरुत्मान तुम, ज्योतित पंखों के उड़ान भर
आत्मा की आकांक्षा को ले जाते ऊपर!
तुम हो भग, आशा सुखमय, चिर शोक पापहन्!
सूक्ष्म दृष्टि, ईप्सा तप की तुम शक्ति अर्यमन्!
मधुपायी युग अश्विन, तरुण सुभग द्रुत भास्वर,
रोग शमन कर, नव निर्मित तुम करते अंतर!
अमृत सोम तुम झरते दिव आनंद से मुखर
अन्न प्राण जीवन प्रद मुक्त तुम्हारे निर्झर!

काल रूप यम करते निखिल विश्व का विषमन,
तुम्हीं मातरिश्वा, सातों जल करते धारण!
तुम्हीं सूत, आलोक वर्ण ऋत चित के ईश्वर,
पथ ऊषाएँ, दिव्य ओरणाएँ सहस्र कर!
तुम हो, एक स्वरूप तुम्हारे ही सब निश्वित,
विधा उसे तुम बहुधा बहु नामों से कीर्तित!

74. प्रच्छन मन

वेद ऋचाएँ अक्षर परम व्योम में जीवित
निखिल देवगण चिर अनादि से जिसमें निवसित!
जिसे न अनुभव अक्षर परम तत्त्व का पावन
मंत्र पाठ से नहीं प्रकाशित होता वह मन!
जिसे ज्ञात वह सत्य वही रे विप्र विपश्चित
ज्योतित उसका बहिरंतर आनंद रूप नित!
एक अंश मानव का मात्र बहिर्मुख जीवन
शेष अंश प्रच्छन्न मनस् में रहते गोपन!
अंतर्जीवन से जो मानव हो संयोजित
पूर्ण बने वह स्वर्ग बने यह वसुधा निश्चित!
अन्न प्राण मन अंतर्मन से हों परिपोषित
सत्य मूल से युक्त ज्योति आनंद हों स्रवित!
तीन अंश वाणी के उर की गुहा में निहित
अधिमानस से दिव्य ज्ञान हो उनका प्रेरित
बहिरंतर मानव जीवन हो सत्य समन्वित,
अंतर्वैभव से भौतिक वैभव हो दीपित!
आत्मा का ऐश्वर्य भूत सौन्दर्य हो महत्
उषाओं के पथ से उतरे पूषण का रथ!

75. सृजन शक्तियाँ

आज देवियों को करता मन भूरि रे नमन
चिन्मयी सृजन शक्तियाँ जो करतीं जगत सृजन!
माहेश्वरी महेश्वर के संदेश को वहन

लक्ष्मी श्री सौन्दर्य विभव को करती वितरण!
सरस्वती विस्तार सूक्ष्म करती संपादन
काली भरती प्रगति, विन कर निखिल निवारण!
आभा देही अखिल देवताओं की माता,
यह अभिन्न अविभाज्य, एकता की चिर ज्ञाता!
इसके सुत आदित्य, सत्य से युक्त निरंतर,
भेद बुद्धि दिति के सुत दैत्य, अहम्मय तमः चर!
आदि सत्य का सक्रिय बोध इला देती नित,
सरस्वती चिर सत्य स्रोत जो हृदय में स्फुरित!
मही भारती वाणी-जिसका ज्ञान अपरिमित,
सद् का देती बोध दक्षिणा, हवि कर वितरित!
शर्मा है प्रेरणा श्वान जो अचित् में अमर,
चित् का छिपा प्रकाश ढूँढ लाता चिर भास्कर!
देवों की शक्तियाँ देवियाँ रे चिर पूजित,
जिनसे मानव का प्रच्छन्न चित्त नित ज्योतित!

76. इन्द्र

इन्द्र सतत् सत्पथ पर देवें मर्त्य हम चरण
दिव्य तुम्हारे ऐश्वर्यों को करें नित ग्रहण!
तुम, उलूक ममता के तम का हटा आवरण
वृक हिंसा और श्वान द्वेष का करो निवारण!
कोक काम रति येन दर्प और गृद्ध लोभ हर
षड् रिपुओं से रक्षा करो, देव चिर भास्वर!
ज्यों मृद् पात्र विनष्ट शिला कर देती तत्क्षण
पशु प्रवृत्तियाँ छिन्न करो हे प्रबल वृत्रहन्!
इन्द्र हमें आनंद सदा तुम देते उज्ज्वल
पीछे अघ न पड़े जो आगे हो चिर मंगल!
दिव्य भाव जितने जो देव तुम्हारे सहचर
वृत्र श्वास से भीत छोड़ते तुम्हें निरंतर!
प्राण शक्तियाँ मरुत साथ देते जब निश्वय
पाप असुर सेना पर तुम तब पाते नित जय!

दान दान पर करता हूँ मैं इन्द्र नित स्तवन
तुम अपार हो स्तुति से भरता नहीं कभी मन!
जौ के खेतों में ज्यों गायें करतीं विचरण
देव हमारे उर में सुख से करो तुम रमण!
सर्व दिशाओं से दो हमको, इन्द्र, चिर अभय
विजयी हों षड् रिपुओं पर जीवन हो सुखमय!

77. वरुण

वरुण मुक्त कर दो मेरे धिक् जीवन बंधन,
पाप निवारक हे प्रकाश से भर मेरा मन!
ऊपर और खुलें ये पाश गुणों के उत्तम
नीचे प्रथम मध्य में हों 'लथ बंधन मध्यम!
अंत प्राण मन सत रज तम का ही रूपांतर
हम चिर अकलुष बनें प्रदिति का आश्रय पाकर!
यह मानव तम सतत् सप्त ऋषियों से रंजित
चैत्य प्राण जिसमें सुषुप्ति में से चिर जागृत!
सदा भद्र संकल्पा से हम हों परिपोषित
देवों को कर तृप्त रहें निज सरल, हृष्ट चित!
भद्र सुनें ये श्रवण भद्र देखें ये लोचन
स्थिर अंगों से सदा सत्य पथ करें जन ग्रहण!
ऋजु प्रिय देव सखा बन रहें सुरा से वेष्टित
उनकी भद्रा सुमति करे सब की रक्षा नित!
पृथ्वी द्यो और अंतरिक्ष की समिधा निश्चित
श्रम से तप से अमृत ज्योति का पावें हम नित!

78. सोमपायी

चिर रमणीय बसंत ग्रीष्म वर्षा ऋतु सुखमय
स्निग्ध शरद हेमंत शिशिर रमणीय असंशय!
मधु केंद्रों को घेर बैठते ज्यों नित मधुवर
ज्ञान इंद्रियों पर स्थित सोम पिपासु निरंतर!कृ
ध्यान मग्न होकर जीवन मधु करते संचय

अर्पित कर कामना इन्द्र तुम में होकर लय!
रथ पर रख ज्यों पैर बैठ जाते वे तन्मय
ऋजु पथ से तुम ले जाते उनको ज्योतिर्मय!
जिसकी महिमा गाते हिमवत् सिन्धु नदी नद
जिसकी बाहु दिशाओं-सी फैली हैं कामद,
जहाँ अमृत आनंद ज्योति के झरते निर्झर
मुक्त सोम रस पीकर पाते धाम वे अमर!
ब्रह्म लोक वह, सूर्य समान अमित ज्योतिर्मय
मनोगगन द्यौ विस्तृत सागर सदृश अनामय!
पृथ्वी से अनंत गुण वृद्ध इन्द्र जो ईश्वर
दिव्य शक्तियाँ उसकी अगणित किरणें भास्वर!

79. मंगल स्तवन

अमित तेज तुम, तेज पूर्ण हो जनगण जीवन
दिव्य वीर्य तुम वीर्य युक्त हों सबके तम मन!
दीप्त औज बल तुम बल ओज करें हम धारण
शुद्ध मन्यु तुम, करें मन्यु से कलुष निवारण!
तुम चिर सह, हम सहन कर सकें धीर शांत बन
पूर्ण बनें हम सोम, सत्य पथ करें सब ग्रहण!
ज्ञान ज्योति का दिव्य चक्षु सामने अब उदित,
देखें हम शत शरद, शरद शत सुनें भद्र नित!
बोलें हम शत शरद, शरद शत तक हों जीवित
ऐश्वर्यों में रहें शरद शत दैन्य से रहित!
शत शरदों से अधिक सुनें देखें हम निश्चित
तन मन आत्मा के वैभव से युक्त अपरिमित!
स्वर्ग शांति दे, अंतरिक्ष दे शांति निरंतर
पृथ्वी शांति, शांति जल, औषधि शांति दें अमर!
विश्व देव दें शांति, वनस्पति शांति दे सदा
ब्रह्म शांति दें, सर्व शांति दें शांति सर्वदा!
शांति शांति दे हमें, शांति हो व्यापक उष्मक
शांति धाम यह धरा बने, हो चिर मन मादक!

80. संन्यासी का गीत

छेड़ो हे वह गान अंतत्तोद्भव अकल्प वह गान
विश्व ताप से शून्य गह्वरों में गिरि के अम्लान
निभृत अरण्य देशों में जिसका शुचि जन्म स्थान
जिनकी शांति न कनक काम यश लिप्सा का निःश्वास
भंग कर सका जहाँ प्रवाहित सत् चित् की अविलास
स्रोतस्विनी उमड़ता जिसमें बह आनन्द अनास
गाओ बढ़ वह गान वीर संन्यासी गूँजे व्योम
ओम् तत्सत् ओम्!
तोड़ो सब शृंखला, उन्हें निज जीवन बन्धन जान
हों उज्ज्वल कांचन के अथवा क्षुद्र धातु के म्लान
प्रेम घृणा, सद् असद् सभी ये द्वन्द्वों के संधान!
दास सदा ही दास समाप्त किंवा ताड़ित, परतंत्र
स्वर्ण निगड़ होने से क्या वे सुदृढ़ न बंधन यंत्र?
अतः उन्हें संन्यासी तोड़ो छिन्न करो गा मंत्र,
ओम् तत्सत् ओम्!
अंधकार हो दूर ज्योति-छल जल बुझ बारंबार
दृष्टि भ्रमित करता तह पर तह मोह तमस विस्तार!
मिटे अजस्र तृषा जीवन की जो आवागम द्वार
जन्म मृत्यु के बीच खींचती आत्मा को अनजान
विश्वमयी वह आत्ममयी जो मानो इसे प्रमाण
अविचल अतः रहो संन्यासी, गाओ निर्भय गान,
ओम् तत्सत् ओम्!
खोजोगे पालोगे निश्चित कारण कार्य विधान!
कारण शुभ का शुभ और अशुभ अशुभ का फल धीमान्
दुर्निवार यह नियम जीव का नाम रूप परिधान
बंधन हैं सच है पर दोनों नाम रूप के पार
नित्य मुक्त आत्मा करती है बंधन हीन विहार!
तुम वह आत्मा हो संन्यासी, बोलो वीर उदार,
ओम् तत्सत् ओम्!
ज्ञान शून्य वे जिन्हें सूझते स्वप्न सदा निःसार–

माता-पिता पुत्र और भार्या, बांधव जन, परिवार!
लिंग मुक्त है आत्मा! किसका पिता पुत्र या दार?
किसका शत्रु मित्र वह जो है एक अभिन्न अनन्य
उसी सर्वगत आत्मा का अस्तित्त्व नहीं है अन्य!
कहो तत्त्वमसि संन्यासी गाओ हे तुम हो धन्य,
ओम् तत्सत् ओम्!
एक मात्र है केवल आत्मा ज्ञाता, चिर विमुक्त
नाम हीन वह रूप हीन, वह है रे चिह्न अयुक्त
उसके आश्रित माया, रचती स्वप्नों का भव पाश,
साक्षी वह जो पुरुष प्रकृति में पाता नित्य प्रकाश!
तुम वह हाँ बोलो संन्यासी छिन्न करो तम तोम,
ओम् तत्सत् ओम्!
कहाँ खोजते उसे सखे इस ओर कि या उस पार?
मुक्ति नहीं है यहाँ वृथा सब शास्त्र देव गृहद्वार!
व्यर्थ यत्न सब, तुम्हीं हाथ में पकड़े हो वह पाश
खींच रहा जो साथ तुम्हें! तो उठो बनो न हताश!
छोड़ो कर से दाम, कहो संन्यासी विहँसे रोम,
ओम् तत्सत् ओम्!
कहो शांत हों सर्व शांत हों सचराचर अविराम,
क्षति न उन्हें हो मुझसे मैं ही सब भूतों का ग्राम
ऊँच नीच द्यौ मर्त्य विहारी, सबका आत्माराम!
त्याज्य लोक परलोक मुझे जीवन तृष्णा, भवबंध
स्वर्ग मही पाताल सभी आशा भय, सुख-दुख द्वन्द्व!
इस प्रकार काटो बंधन संन्यासी रहो अबंध,
ओम् तत्सत् ओम्!

❐❐❐